वंशीधर गोपाल

श्री भागवत दर्शन

भागवती कथा 6

खण्ड ६०

[उपनिषद् अर्थ]

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
प्रणीत प्रभुदत्तेन श्रीभागवतदर्शनम् ॥

लेखक

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी

प्रकाशक

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर

(झूसी) प्रयाग

संशोधित मूल्य २-०-रुपया

संशोधित मूल्य

प्रथम संस्करण १००० } दिसम्बर १९७१ पौष सं०-२०२८ { ~~मूल्य : १.६५~~ 2

मुद्रक—वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२ मुट्ठीगंज, इलाहाबाद

विषय-सूची

विषय	पृष्ठाङ्क
सस्मरण (९)	१
१. उद्गीथोपासना की उत्कृष्टता सम्बन्धी आख्यायिका(२)	१७
२. उपस्ति ऋषि तथा आपद्धर्म	२५
३. उपस्ति मुनि का राजा के यज्ञ में जाना	३५
४. उपस्ति मुनि का यज्ञ मे ऋत्विजों से सम्वाद	४२
५. शौव साम सम्बन्धी कथा	४८
६. सामवेद के स्तोभों की उपासना	५९
७. समस्त साम की साधु भाव से उपासना	६५
८. लोकसम्बन्धी पञ्चविध सामोपासना	७३
९. वृष्टि सम्बन्धिनी पञ्चविध सामोपासना	८२
१०. जल में पञ्चविध सामोपासना	८८
११. ऋतुओं में पञ्चविध सामोपासना	९३
१२. पशुओं मे पञ्चविध सामोपासना	९९
१३ प्राणों में पञ्चविध सामोपासना	१०४
१४. वाणी सम्बन्धिनी सप्तविध प्राणोपासना	११०
१५. सात प्रकार की आदित्य दृष्टि से सामोपासना	११५
१६. मृत्यु से अतीत सप्तविध सामोपासना	१२३
१७. गायत्र सामोपासना	१२८
१८. रथन्तर साम की उपासना	१३३
१९. साम सम्बन्धी वामदेव्य-उपासना	१३८
२०. बृहत्साम सम्बन्धिनी उपासना	१४५
२१. सामवेद की वैरूप उपासना	१५०
२२. साम के वैराज भेद की उपासना	१५४
२३. सामवेद की शक्वरी उपासना	१५९
२४. रेवती और यज्ञायज्ञीय साम की उपासना	१६३
२५. सामवेद की राजन उपासना	१६७
२६. सामवेद की सबमें ओतप्रोत उपासना	१७३
२७. साम के विविध आगानों उद्गीथों के नियम	१७९
२८. वर्णों की देवात्मता और उनके उच्चारण की विधि	१८४

संस्मरण

[राजनैतिक नेता]

गुणाः गुणज्ञेषु गुणाः भवन्ति
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः
आसाद्य तोयं प्रभवन्ति नद्याः
समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः ॥*

छप्पय

*पात्र भेद तैं वस्तु एकई होहि अशुभ शुभ।
दूध अमृत के सरिस ताम्र वर्तन में बनि विष॥
बरसा को जल गिरै नदी में पेय कहावै।
वही नीर निधि-परै छार महिँ पीयो जावै॥
संग दोष तैं वस्तु-इक, भली बुरी बनि जात है।
खल सगति त्यागे पुरुष, तो पुनि देव कहात है।*

विद्या, धन और शक्ति ये तीनों ही वस्तुएँ अत्यन्त उत्तम हैं, किन्तु यदि विद्या खल पुरुष पर आ जाय तो वह उसका उपयोग वितण्डावाद विवाद में करेगा, वही विद्या सज्जन पुरुष पर आ

* गुणज्ञ पुरुष के ही सभी सद्गुण गुण कहलाते हैं, वे ही गुण यदि निगुण पुरुष के समीप हों, तो दोष बन् जाते हैं। जैसे वर्षा का जल नदी मे गिरे तो वह पीने योग्य पानी बन जाता है, वही समुद्र मे गिरे तो समुद्र के ससर्ग से मीठा जल भी अपेय बन जाता है।

जाय तो उस विद्या से ज्ञान प्राप्त करके संसार-सागर से सदा के लिये मुक्त हो जायगा। इसी प्रकार यदि धन दुष्ट पुरुष के पास आ जाय, तो उस धन से दुर्मदान्ध बनकर दूसरों का अनिष्ट ही करेगा। वही धन सज्जनों के समीप आ जाय तो उससे वे दान धर्म करके परलोक को बनायेंगे। ऐसे ही शक्ति की बात है, यदि दुष्ट जनों के पास शक्ति बढ़ जाय, तो उससे वे दूसरों को पीड़ा ही पहुँचायेंगे। वही शक्ति सज्जन पुरुषों में हो, तो वे उस शक्ति का उपयोग दीन हीनों की रक्षा में, दुखी पुरुषों की पीड़ा दूर करने में लगावेंगे। पात्र भेद से एक ही गुण कहीं अच्छा और कहीं बुरा बन जाता है। बुरे पुरुष अच्छी वस्तु को भी बुरी बना देते हैं।

हमारे देश मे स्वतन्त्रता के पश्चात् एक नया वर्ग उत्पन्न हुआ है। वे अपने को सामाजिक कार्यकर्ता कहते हैं किन्तु वास्तव में वे राजनैतिक जन्तु हैं। कानपुर में दो आदमी किसी दुकान पर सौदा ले रहे थे, उनमें एक सफेद खद्दर की टोपी पहिने था। दुकानदार ने पूछा—"आप क्या काम करते हैं ?"

तब बगल पास का दुकानदार बोला—"देखते नहीं गान्धी टोपी पहिने हैं, नेता हैं।"

आज कल नेतापन भी एक व्यवसाय बन गया है। ये राजनैतिक जन्तु गिरगिट पन्थी होते हैं। जब चाहें जैसा रंग बदल सकते हैं। इन्हें देश से, धर्म से, समाज से, साहित्य से कोई प्रयोजन नहीं। देश धर्म भाड़ में जाय, समाज चूल्हे में पड़े, उन्हें अपनी पद प्रतिष्ठा की ही चिन्ता रहती है। अपना स्वार्थ सँध जाय, फिर चाहे देश रसातल चला जाय, धर्म पाताल में चला जाय इन्हें इसकी चिन्ता नहीं। ये जनता के नेता या राजनैतिक जन्तु धर्म निरपेक्ष, जातिवाद, वर्गवाद, तथा सम्प्रदायवाद से

अपने को पृथक् बताते हैं, किन्तु इनका स्वार्थ सिद्ध होता हो, तो इन सब वादों में घुलमिल जायेंगे। ये समाज की जोंक होते हैं। सेवा के नाम पर ये समाज में चिपक जाते हैं और शनैः शनैः समाज का रक्तपान करते-करते मोटे बन जाते हैं। इनकी न कोई जाति है, न धर्म। इनका तो टका धर्मः टका कर्म, टकैव परमागतिः है। एक पुरानी कहावत है—

हरिजन, हीरा, हुरिकिनी, हिजरा सब थल होइ।
सब जातिनि में ऊपजैं, इनकी जाति न कोइ॥

प्रतीत होता है, तब तक इन राजनैतिक जन्तुओं का जन्म नहीं हुआ होगा नहीं तो यह दोहा यों होता—

नेता नर नारी सबहिं, हरि जन हिजरा होइ।
खद्दर पहिने बनि गये, इनकी जाति न कोइ॥

पहिले इस देश में वर्णाश्रम धर्म का प्रचार था। ब्राह्मण लोग त्याग प्रधान होते थे। सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण वही माना जाता था, जो सबसे अधिक त्यागी हो, अर्थात् जो दूसरे समय को भी अपने लिये अन्न संग्रह न करे, कटे खेतों में किसानों द्वारा छोड़े अन्न को बीनकर अथवा अन्न की दुकान के सामने पड़े दानों को ही बीनकर उनसे निर्वाह करे। अधिक से-अधिक ब्राह्मण ६ महीने का अन्न रख सकता था। जहाँ नया अन्न आया वहाँ पुराने को बाँट दे। इतना संग्रह करने वाला ब्राह्मण निम्नश्रेणी का माना जाता था। कहने का अभिप्राय इतना ही है, ब्राह्मण त्याग प्रधान होता था, अपने लिये कुछ भी संग्रह नहीं करे, दिन रात्रि परोपकार में निरत रहे। समाज के कल्याण के लिये ही कर्म करता रहे। उसका जीवन धर्ममय हो, धर्माचरण ही जिसके जीवन का उद्देश्य हो। ज्यों-ज्यों ब्राह्मणों में धर्म के प्रति उदासीनता

और स्वार्थ के प्रति ममता बढ़ने लगी, त्यों-त्यों ब्राह्मणों में भी कई श्रेणियाँ हो गयीं। अत्रि संहिता में दश प्रकार के ब्राह्मण बताये हैं।* वे इस प्रकार हैं, (१) देवब्राह्मण, (२) मुनि ब्राह्मण, (३) द्विज, (४) राजा, (५) वैश्य, (६) शूद्र, (७) निषाद, (८) पशु, (९) म्लेच्छ, (१०) चाण्डाल।

१. देव ब्राह्मण—तो वे हैं, जो सन्ध्या, स्नान, जप, हवन, देवपूजन, अतिथि-सत्कार और बलि वैश्वदेवादि धर्मकार्यों में निरन्तर लगा रहे, अपने लिये कुछ भी संग्रह न करे।

२. मुनि ब्राह्मण—वे कहलाते हैं, जो नित्य श्राद्धतर्पण देव-पूजन में निरत रहता हुआ वन में वास करे और वन में प्राप्त शाकपत्र, कन्द, मूल फलादि से ही अपना निर्वाह करे। ग्राम्यो-षधि अन्नादि ग्रहण न करे।

३. द्विज ब्राह्मण—वे कहलाते हैं, जो निरन्तर वेदान्तादि शास्त्रों के स्वाध्याय प्रवचनादि में लगा रहे। सभी प्रकार के सङ्गों का परित्याग करके सांख्ययोगादि शास्त्रों के विचार में ही निरत रहे। प्रारब्धवश अयाचित वृत्ति से जो भी प्राप्त हो जाय उसी पर जीवन निर्वाह करे।

४. क्षत्रिय ब्राह्मण—वे कहलाते हैं, जो अस्त्र-शस्त्रों द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। और युद्ध में अस्त्र-शस्त्र लेकर लड़ते हैं और विजय करते हैं या सम्मुख मारे जाते हैं। जिनकी मृत्यु सम्मुख युद्ध में ही होती है।

५. वैश्य ब्राह्मण—वे कहलाते हैं, जो जन्मना तो ब्राह्मण हैं,

---

* देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्य शूद्रो निषादकः।
पशुर्म्लेच्छोऽपि चाण्डालो विप्रा दशविधाः स्मृताः॥

(अत्रि संहिता)

किन्तु कृषि, गोरक्ष तथा वाणिज्य द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। थोडा बहुत पूजा पाठ धर्मकार्य भी करते हैं।

६. शूद्र ब्राह्मण—वे कहलाते हैं, जिनका जन्म तो ब्राह्मण कुल में हुआ है किन्तु लाह, नमक, तेल, कुसुम्भ, दूध, दही, घृत, मदिरा, शहद, मास आदि शास्त्र निषिद्ध वस्तुओं का व्यापार करके उसी के द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं।

७. निषाद ब्राह्मण—वे ही हैं जो जन्मजात तो ब्राह्मण हैं, किन्तु चोरी, डाका, हत्या, मछली, मास द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं, निषिद्ध पदार्थों को खाते हैं, निषिद्ध कर्मों को करते हैं।

८. पशु ब्राह्मण—वे कहलाते हैं, जिनका जन्म तो ब्राह्मण कुल में हुआ है, किन्तु सस्कार और विद्या से हीन हैं। नाम मात्र को यज्ञोपवीत धारण किये रहते हैं। उस ब्रह्मसूत्र के गर्व से गर्वित बने रहते हैं। धर्म कर्म कुछ भी नहीं करते। आहार, निद्रा, मैथुनादि पशु धर्मों में ही निरन्तर निरत बने रहते हैं।

९. म्लेच्छ ब्राह्मण—वे कहलाते हैं, जो ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी वापी, कूप, तालाब आदि जनता के उपकार के स्थानों को नष्ट कर देते हैं। कुएँ से लोगों को जल नहीं लेने देते, फल वाले वृक्षों को कटवा देते हैं। फलों को दूसरों को खाने नहीं देते।

१०. चाण्डाल ब्राह्मण—वे हैं जो विद्याहीन, क्रियाहीन, सदाचारहीन, सर्व धर्म रहित, निर्दयी हैं, वे चाण्डाल सदृश हैं।

इनमें देव, मुनि और द्विज तक के ब्राह्मण तो वास्तव में ब्राह्मण हैं, शेष उत्तरोत्तर हीन और केवल नाम मात्र के ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण की परिभाषा यही है जो अपने लिये कुछ भी न चाहता हुआ धर्मकार्य में–सेवा कार्य में लगा रहे।

क्षत्रिय का धर्म यह है, अपने कामभोग के लिये अर्थ का भी

संचय करे और निरन्तर प्रजापालन में तत्पर रहे। प्रजापालन कर्म में सर्वदा अपने प्राणों की भी आहुति देने को उद्यत रहे। शैया पर पड़कर न मरे। या तो युद्ध में शरीर त्याग करे अथवा वन में तपस्या करते हुए योगाग्नि में शरीर को भस्म करे।

वैश्य के लिये अधिक-से-अधिक धन संग्रह करने का विधान था। वह कृषि द्वारा, गोपालन द्वारा, व्यापार वाणिज्य द्वारा विपुल मात्रा में धन कमाकर उसे धर्म कार्यों में, समाज सेवा में व्यय करे। किसी से याचना न करे।

शूद्रों का यह काम था, कि वे अपने लिये कुछ भी संग्रह न करें, तीनों वर्णों के आश्रित रहें, उनकी सेवा में सदा तत्पर रहें, वे जो भी दें उसी से अपना निर्वाह करें। वे तीनों वर्णों के पारिवारिक सदस्य की ही भाँति रहें। तीनों वर्णों के गृह स्वामियों का भी कर्तव्य यह बताया है, कि पहिले बच्चों को, गर्भिणी स्त्रियों को, दास-दासी तथा सेवकों को भोजन कराके तब स्वयं भोजन करें। ऐसी पहिले समाज की व्यवस्था थी। कुछ संकर जाति के लोग भी होते थे, उनकी जाति माता की जाति या माता की जाति से ऊँची, पिता की जाति से नीची मध्यम जाति मानी जाति थी। जैसे ब्राह्मण से क्षत्राणी में जो सन्तान होगी उसे मूर्धाभिषिक्त (उप ब्राह्मण) माना जायगा। वे माता के कर्म को ही करने वाले माने जाते थे।

क्षत्रियों के अथवा ब्राह्मणों के द्वारा जो वैश्य तथा शूद्रा पत्नी में सन्तान होती थी। उनका काम होता था, राज्य सेवा। ये कायस्थ, क्षत्रा, कूटकृत, पञ्जीकर, करण आदि नामों से पुकारे जाते थे। इनके प्रायः क्षत्रिय विप्र जाति के पिता तथा वैश्य, शूद्र जाति की मातायें होती थीं। ये लोग युद्धों में रथ हाँकने का तथा राजाओं के सचिवों-सेनापतियों से लेकर लेखपालों तक के पद

पर नियुक्त रहते थे। कहना चाहिये, प्रजा के प्रबन्ध का समस्त भार इन्हीं के ऊपर था। मन्त्री तो ब्राह्मण ही होते थे। वे केवल राजाओं को सम्मति ही देते थे, शास्त्रों का सिद्धान्त, कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय बताते थे। सक्रिय राज-काजों में भाग नहीं लेते थे। राज-काजों का समस्त कार्य कायस्थों के अधीन होता था। जैसे धृतराष्ट्र के समस्त राज्य के सचिव विदुरजी ही थे। विराट् राजा का सेनापति सचिव तथा कर्ता-धर्ता कीचक ही था। ये लोग ब्राह्मणों के बड़े भक्त होते थे। राज-काज में निपुण होने से चतुर तथा बड़े चालू होते थे। जो अधिक स्वार्थी होते थे वे प्रजा को पैसों के लिये पीड़ा पहुँचाया करते थे।ॐ

इनको स्थान-स्थान मसीश-अर्थात् स्याही लेखनी का स्वामी-कहा है। लिखा पढ़ी का काम किया करते थे। प्रजा के लोग प्रायः इनसे प्रसन्न नहीं रहते थे। राज काज ऐसा ही होता है। अधिकार प्राप्त होने पर कोई विरला ही ऐसा होता है जो किसी-न-किसी रूप में उत्कोच-घूँस या रिश्वत-न लेता हो। जो लोग मुँह माँगा उत्कोच न देते होंगे, उन्हें ये राजकर्मचारी पीड़ा पहुँचाया करते होंगे। इसीलिये ब्रह्म वैवर्तपुराण में भगवान् श्री कृष्ण ने नन्दबाबा को शिक्षा देते हुआ कहा है, प्रजा को इन कायस्थों की पीड़ा से विशेषकर बचाये रहना चाहिये। यहाँ कायस्थ कहने से जाति विशेष से अभिप्राय नहीं है। राज्य कर्म-

---

ॐ कायस्थोऽन: समाख्यातो मसीश प्रोक्तवाश्चयम्।
शठश्च शूरता किंचिदनेकप्रतिपालकृत्।
शठत्वाच्चतुरत्वाच्च विप्रमेवामनुक्षणम्।
वाञ्छत्येव मसीश: स मदोद्वेगीतिमावहन्।
(वन्हिपुराण पशुपति दानाध्याय)

चारियो से है। आज कल भी सचिवालयों में सभी जाति के लोग काम करते हैं वे प्रथम श्रेणी के कर्मचारी, द्वितीय श्रेणी के कर्मचारी ऐसे कहाते हैं। सभी लिपिक एक ही श्रेणी में आते हैं।

पहिले समय मे प्रजाजन इन कायस्थों-राजकर्मचारियों-से पीडित थे। आज राजकर्मचारी के स्थान में राजनतिक जन्तु आ गये हैं। ये न मन्त्री-केवल सम्मति देने वाले- ही हैं, न सचिव केवल राज्य प्रबन्ध करने वाले-ही हैं। यह एक सकर जाति ऐसी बन गयी है, जो राज कर्मचारियों से बढकर प्रजा के लिये समस्या बन गयी है। जो किसी भी विषय में सफल न हो वह राजनैतिक नेता बन जाय।

मुझे एक आदमी ने बताया था। एक बहुत बडे आदमी के ५ पुत्र थे। एक ने पूछा—"आपके पुत्र क्या करते हैं ?"

उसने कहा—"एक तो पढा लिखा भला आदमी है, वह तो महाविद्यालय में प्राध्यापक है। दूसरे को सेवा के साथ पैसा की भूख है, वह चिकित्सक है। एक हस्त कौशल में कुशल अभियन्ता (इंजिनियर) है, एक चलते पुर्जे अर्थ लोलुप चतुर है वह कलहोपजीवी अधिवक्ता है। पाँचवाँ न पढा लिखा है न किसी काम धन्धे का है, मैंने कहा—जा, तू किसी दल में मिलकर राजनैतिक जन्तु बन जा, सो वह अमुक दल का नेता है।"

वास्तव में ये राजनैतिक जन्तु प्रायः ऐसे ही स्वार्थी बिना पैंदी के लोटे होते हैं, जिधर इनका स्वार्थ सधता है, उधर ही ढुलक जाते हैं। हमारे यहाँ एक शिशु परीक्षा होती है। अन्न प्राशन के समय बच्चे के आगे पुस्तक, रुपया पैसा चित्र तथा नाना सामग्रियाँ रखते हैं। बच्चा ने यदि पुस्तक पर हाथ रख दिया, तो समझा जाता है विद्वान होगा, कृषि गोरक्षा व्यापारिक वस्तुओं पर हाथ रख दिया तो वैसा होगा।"

एक पडितजी थे, उन्होंने अपने बच्चे की परीक्षा करायी। लडके ने मिठाई, रुपया पैसा, सुरा की बोतल, सब पर हाथ मारा। तब हँसकर पडितजी ने कहा—"अवश्य ही यह राजनैतिक जन्तु होगा। सभी पर एक साथ हाथ सफा करेगा। जब से यह राजनैतिक नेता वर्ग हुआ है, तब से इसने धर्म, समाज, शिक्षा, उपासना, सौहार्द्र, सद्गुण सभी मे सकरता विषमता पैदा कर दी है। जिस विषय मे इन्होंने हस्तक्षेप किया, मानो वह विषय चौपट हुआ। धर्म मे भी ये लोग हस्तक्षेप करते हैं, धर्म के शिक्षक भी अब ये ही बन गये। सब अपनी-अपनी साम्प्रदायिकता–पोंगापन्थी–छोडो सब मिलकर खिचडी उपासना करो। ईश्वर अल्ला तेरा नाम, सबको सन्मति दे भगवान्" इसे न अल्ला वालों ने अपनाया न भगवान् वालों ने किन्तु इन्होंने अपना एक नया ही पन्थ बना लिया।

पहिले हमने भगवन्नाम सकीर्तन का प्रचार विशुद्ध धार्मिक भावना से किया था अब राजनैतिक लोगो ने इसे सास्कृतिक कार्यों में–मनोरञ्जन में–ला पटका है। उसकी प्रतियोगितायें होती हैं सकीर्तन का महत्व ही चौपट कर दिया।

पहिले हिन्दी सभी प्रान्तो की सर्वमान्य राजभाषा थी। अटक से कटक तक, हिमालय से कन्याकुमारी तक सभी लोग हिन्दी पढते समझते थे, जब से हिन्दी इन राजनैतिक जन्तुओं के हाथों आयी, उसका महत्व ही नष्ट कर दिया। अब उसे प्रान्तीय भाषा बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं, उसे भी बनावेंगे या चोपट करेंगे भगवान् जाने।

गोरक्षा का प्रश्न विशुद्ध धार्मिक प्रश्न था, आज से १५–२० वर्ष पूर्व तक किसी भी वर्ग का कोई भी हिन्दू गोरक्षा का विरोधी नहीं था, इस बात को हम बडे अभिमान से कहा करते थे, कि

विरोध किया था। उस समय उस गान्धी की आँधी में उस स्वतन्त्रता के तूफान मे स्वार्थियों की दाल नहीं गलती थी, उस समय तो स्वतन्त्रता के उन्मादी ही जेलों के भरने में उत्साह दिखा रहे थे।

सरकार एक ओर तो घोर दमन कर रही थी, दूसरी ओर राष्ट्रीय महासभा के विपक्ष मे एक अखिल भारतीय अमन सभा की उसने स्थापना करायी थी। उसके अखिल भारतीय अध्यक्ष, स्यात् हमारे प्रयाग के सुप्रसिद्ध विधि विशेषज्ञ सर तेजबहादुर सप्रू थे। सरकारी समस्त अधिकारी तन्त्र अमन सभा के प्रचार में लगा हुआ था, राजभक्तों को अमन सभा का सदस्य बनने को विवश किया जाता था। बड़े-बड़े सेठ साहूकार, धनी उपाधि-धारी, सरकार की हॉ-में-हॉ मिलाने वाले पढ़े-लिखे चाहें ऊपर ही से सही अमन सभा के सदस्य बन गये थे। किन्तु वह प्रभाव हीन थी। कोई हृदय से उसे नहीं चाहता था। सरकारी अधिकारियों के दबाव से-उन्हें प्रसन्न करने-अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये अमन सभा में जाते। हमारे यहॉ के एक सनातन धर्म सभा के उपदेशक भी उसके प्रचारक बने। हम लोग उन्हें चिढ़ाते थे, उनका अपमान करते थे, वे मुंह छिपाकर भाग जाते! हमारे अनूपशहर के सुप्रसिद्ध संस्कृत के कवि पं० अखिलानन्द जी शर्मा भी अमन सभा के उपदेशक हो गये थे।

एक दिन मैंने पूछा—"पंडित जी! आप इतने भारी विद्वान् होकर अमन सभा में कैसे चले गये?"

वे बड़े कड़ककर बोलते थे, बोले—"देखिये, महाराज! मुझे अमन सभा फमन सभा से कोई प्रयोजन नहीं। वे मुझे ५०) नित्य देते हैं। आप ५०) दीजिये आपकी ओर से बोलूँगा।"

उन दिनों पचास रुपये आज के एक सहस्त्र रुपये के बराबर

थे। यहाँ तो सब त्यागी थे, उन्हें ५०) कौन दे। फिर अमन सभा वालों से जनता के सभी लोग मन-ही-मन घृणा करते थे। अमन सभाई उन दिनों एक गाली समझी जाती थी। किसी से कह दो–"यह तो अमन सभाई है।" तो इसे वह अपना घोर अपमान समझता था, अतः बड़े लोग चुपके से जिलाधीश को चन्दा दे आते सदस्य बन आते, किन्तु बताते नहीं थे कि हम अमन सभा के सदस्य हैं। भीतर-ही-भीतर स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिकों की शक्ति भर सहायता करते। मुझे भी बड़े-बड़े लोग, पढ़े-लिखे लोग, भोजन को बुलाते और चुपके से सुन्दर-सुन्दर भोजन करा कर विदा कर देते।

अमन सभाओं के सभापति जिलाधीश ही बना करते थे। उन दिनों जिलाधीशों का पद राज्यपाल से भी ऊँचा माना जाता। वह जिले भर का सर्वेसर्वा माना जाता था। जिले भर में जो चाहें सो करा दे उसे सभी पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। वही जिसे चाहें उप जिलाधीश (डिप्टी कलक्टर) बना दे। जिसे चाहे राय साहब, राय बहादुर, खानबहादुर, सर आदि की उपाधि दिलवा दे। एक जिले का जिलाधीश, जिले भर के सभी प्रतिष्ठित पदों का अध्यक्ष होता था। वही जिलाधीश, वही जिला न्यायाधिकारी, जिला परिषद् का सभापति, नगरमहापालिका का सभापति, जेल का मुख्याधिकारी, पुलिस का, नहर का,यहाँ तक कि जिले के सभी विभागों का वही सर्वेसर्वा होता था। उसके नाम से बड़े-बड़े राजे महाराजे ताल्लुकेदार, जमींदार काँपते थे। उसके भय से सरकारी अधिकारियों के दबाव से लोग अमन सभाओं में बहुत ही न्यून सख्या में जाते। फिर स्वतन्त्रता के सेवक जाकर उन सभाओं में विघ्न डालते। उनके पास ही अपनी सभायें करते। जनता वहाँ से उठकर इनकी सभा मे आ जाती। उस समय के उत्साह की

कोई उपमा हो नहीं दी जा सकती। अनुपमेय उत्साह था।

एक दिन मैंने सुना अमुक स्थान पर (खुर्जा और बुलन्दशहर की सडक के बीच मे किसी गाँव मे) अमन सभा होगी, जिलाधीश उसके सभापति होंगे। मैं अकेला ही डंडा लेकर वहाँ पहुँच गया। उन दिनो जिलाधीश का पद किसी भारतीय को नहीं दिया जाता था। कोई भी महत्वपूर्ण पद भारतीयों को नहीं मिलता था। भारतीयों के लिये सबसे ऊँचा पद उप जिलाधीश (डिप्टी कलेक्टर) का ही पद था। हमारे यहाँ के एक साधारण पढ़े सेठ के लड़के अवश्य कहीं जिलाधीश बना दिये गये थे। वे इसलिये कि भारत सरकार की ओर से एक आयोग (कमीशन) फिजी या मारीशसद्वीप मे भारतीयों की जाँच के लिये नियुक्त हुआ था। उसके सब सदस्य अँगरेज-ही-अँगरेज थे। एक भारतीय को रखना आवश्यक था। किसी भी प्रान्त का कोई भारतीय अपने भाइयों के गलो पर छुरी चलवाने को उद्यत नहीं हुआ। तब हमारे यहाँ के एक सेठ ने अपना एक सम्बन्धी भेज दिया। उसने अँगरेजों ने जैसे कहा वैसे हस्ताक्षर कर दिये। इसी के पारतोषिक रूप में उसे (जिलाधीश) बना दिया गया। यह सबसे भारी पारतोषिक था।

उसकी भी एक कथा सुनिये। मेरे साथ एक चौबे रहता था। पढ़ा-लिखा कुछ भी नहीं था, किन्तु अक्खड प्रथम श्रेणी का। जैसा चाहें उससे काम करा लो। एक दिन रामलीला में या किसी और मेला के समय वे भारतीय जिलाधीश भी थे। उनकी अकड़ का क्या कहना। एक तो गिलोय फिर नीम चढ़ी। एक तो सबसे बड़े धनिक और फिर भारतीयों को दुर्लभ जिलाधीश का पद। चौबे जी से कुछ अंट-संट बात कह दी

होगी। चौबेजी ने भरे मेले मे उतारी जूती और उनके सिर पर तडातड जमा दी। तुरन्त पुलिस ने उन्हे पकड लिया।

अब उन पर अभियोग क्या लगाया जाय। जूती मारने का अभियोग लगाने से तो भारतीय जिलाधीश का घोर अपमान है। फिर न्यायालय में वे कैसे कहते, कि मेरे इसने जूती लगाई हैं। अतः उन पर चोरी करने का मिथ्या अभियोग लगाया गया। उसने न्यायालय मे स्पष्ट कह दिया—मैंने चोरी फोरी कुछ नहीं की। भारतीय ज़िलाधीश के दो जूतियाँ लगायी थीं।"

न्यायाधीश भला आदमी था, वह भी सच जानता था, हँस पडा। किन्तु साधारण जेल का दण्ड तो उन्हे दिया ही गया।

हाँ तो मैं अमन सभा की सार्वजनिक सभा मे पहुँच गया और खडे होकर कुछ पूछने लगा। उसी समय उस सभा के सचालक जो एक मुसलमान कलहोपजीवी अधिवक्ता थे, मेरे पास आये, मेरा कान पकडकर सभा से बाहर घसीटते ले गये। जिलाधीश अध्यक्ष के आसन पर नीचा सिर किये हुए देखता रहा। उसने एक भी शब्द नहीं कहा। बाहर आकर मैंने उसके प्रतिपक्ष मे पास ही दूसरी सभा की, व्याख्यान देने लगा। जो सभा मे लोग बैठे थे, वे मेरे अपमान से सब दुखी थे, किन्तु भयवश कुछ कर नहीं सकते थे, एक एक करके सभी वहाँ से उठकर मेरी सभा में आ गये। जिलाधीश चुपचाप उठकर अपनी गाडी में बैठकर चला गया, खिसक गया कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि उन दिनों भीतर ही भीतर अँगरेज भयभीत रहने लगे थे। ऊपर से निर्भयता दिखाते थे।

मैं ये सब उपद्रव इसलिये करता था, जिससे किसी प्रकार पकडा जाऊँ। नेतागीरी से वचित न हो जाऊँ। उन दिनो हिन्दू मुसलमानों में स्वाभाविक ही बडा स्नेह हो गया था। रोटी

बेटी की एकता का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। उसकी तो कभी स्वप्न में सम्भावना ही नहीं थी। गान्धी जी ने भी अपने लेखों में कई बार लिखा—"मैं रोटी बेटी एकता के लिये नहीं कहता। इस में तो सभी स्वतन्त्र हैं। किन्तु देश की एकता के लिये हिन्दू मुसलमान दोनों को कन्धे से कन्धा भिड़ाकर प्रयत्न करना चाहिये।"

हमलोग मुसलमानों के यहाँ जाते। वे हमारे भोजन का प्रबन्ध गाँव के ब्राह्मणों के यहाँ कराते। गंगा किनारे बसी बुगरासी भगवानपुर के पास है। वहाँ के पठान जमींदार बड़े नामी थे। जब मैं बसी बुगरासी गया तो वहाँ के बड़े-बडे पठान मुसलमान सैकड़ों मिलकर पास के तगा ब्राह्मणों के गाँवो में जाते और गौरक्षा के प्रचार मे गले में ढोलक डालकर भजन गाते। बहुत से पठान पकड़े भी गये। कैसा उस समय का दृश्य था। अन्त में वह भी समय आ गया कि हमारे यहाँ के उप जिलाधीश ने विवश होकर मेरे नाम पकड़ने का आदेश (वारंट) निकाला। अब मैं किस प्रकार पकडा गया। और कैसे सर्व प्रथम जेल के दर्शन हुए, इस प्रकरण को अगले अक में परमार्थ चर्चा की पुस्तक में गप्प-शप्प और निजी चर्चा के लिये मनोरञ्जनार्थ इतना ही स्थान घेरना पर्याप्त है।

छप्पय

करम करै निष्काम कृष्ण अरपन करि देवै।
धरम समुझि सब करै न प्रतिफल ताको लेवै॥
करम न बन्धन करैं मुक्ति साधन बनि जावैं।
करै कामना सहित जगत बन्धन बँधि जावैं॥
कर्ता धर्ता विधाता, हैं प्रभु विश्वम्भर अखिलपति।
कर्तापन अभिमान तू, करै व्यरथ क्यों मूढ़मति॥

पौष कृ० ३-२००८ वि० प्रभुदत्त

उद्गीथोपासना की उत्कृष्टता सम्बन्धी आख्यायिका (२)

[१०३]

तँ ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायन दाल्भ्यमुवाचा-प्रतिष्ठितं वै किल ते दाल्भ्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति ॥*

(छा० उ० प्र० प्र० ८ खा० ६ म०)

छप्पय

सामतत्त्वविद सुने तुम्हारे अप उत्तर फिर ।
देवै तुमहँ शाप गिरै घड़तैं तुमरो सिर ॥
तब पुनि बोले दाल्भ्य–स्वरग आधार बतावें ?
शिलक कहैं—आधार स्वरग को भूमि कहावें ॥
मनुज लोक आधार का ? प्रश्न दाल्भ्य ने जब करयो ।
भूमि सबनि आधार है, साम जाहि वेदनि कह्यो ॥

---

* चैकितानात्मज दाल्भ्य ऋषि से शालवानात्मज शिलक ने कहा—"हे दाल्भ्य ! निश्चय तुम्हारा निश्चय किया हुआ साम अप्रतिष्ठित है। इस समय तुम्हारे इस अशुद्ध उत्तर को सुनकर कोई सामवेत्ता यह कह दे—कि अशुद्ध उत्तर देने के कारण तुम्हारा सिर भूमि पर गिर जाय" -तो निश्चय ही तुम्हारा सिर भूमि पर लोटने लगेगा।

यथार्थ क्या है ? अयथार्थ क्या है ? इस अभिलापासे जो शिष्टता संयमपूर्वक शास्त्र चर्चा की जाती है वास्तव में उसी का नाम तत्वबोध निर्णयात्मकवाद है। ऐसा वाद-विवाद वीतराग महात्माओं में तथा गुरु और शिष्य में अथवा और भी धर्मात्मा श्रेयार्थी पुरुषों में हुआ करता है। पूर्व पक्ष वाला अपने तर्कादि प्रमाणों में पराजित हो जाय, आगे उत्तर न दे सके, तो उसे उत्तर पक्ष वाले के प्रति क्रोध या अश्रद्धा प्रकट नहीं करनी चाहिये। अपितु नम्रतापूर्वक निवेदन करे—"मैं तो इतना ही जानता हूँ, इससे अधिक यदि आप जानते हों, तो बतावें। अब मैं ही आप से प्रश्न करता हूँ।" इस पर वह प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहे—"बहुत अच्छी बात है, अब आप ही इससे आगे प्रश्न करें, मैं आप के प्रश्नों का यथामति उत्तर दूँगा।" जब वह भी यथार्थ निर्णय पर न पहुँच सके और कोई तीसरा या चौथा व्यक्ति निर्णायक उत्तर दे दे, तो उसकी सब प्रकार से परीक्षा करके उसे प्रमाण, तर्क, साधन, उपालम्भ और सिद्धान्त इनकी कसौटी पर कसकर उसे सबको स्वीकार कर लेना चाहिये यही यथार्थ बोध की इच्छा से किये हुए वाद का प्रतिफल है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब शिलक मुनि ने स्वर्गलोक के आश्रय का प्रश्न किया, तब दाल्भ्य मुनि ने कहा—"अब आप अति प्रश्न कर रहे हैं। हम लोग स्वर्ग को ही साम की पूर्ण प्रतिष्ठा मानते हैं। वेदों में साम को ही स्वर्गलोक कहकर उसकी पूर्ण-प्रतिष्ठा की गयी है (स्वर्गो वै लोकः सामवेदः) जब साम की प्रतिष्ठा स्वर्ग ही है, हम लोगों का प्रश्नोत्तर यहीं समाप्त हो जाना चाहिए। हमें स्वर्ग से आगे नहीं जाना चाहिए। स्वर्ग की प्रतिष्ठा साम ही है, इससे आगे प्रश्न करना अनुचित है।"

इस पर शिलक ऋषि ने कहा—"दाल्भ्य ! तुम्हारा उत्तर अंतिम

नहीं है। यह जो तुम कह रहे हो, स्वर्ग ही साम का आश्रय है, यह आपका कथन उचित नहीं। निःसन्देह आपका बताया हुआ साम का अन्तिम आश्रय स्वर्ग प्रतिष्ठा हीन है। स्वर्ग का भी कोई आश्रय अवश्य ही होना चाहिये। बिना सोचे समझे जो तुमने यह अशुद्ध उत्तर दे दिया, यह काम तुमने उचित नहीं किया। मैं तो तुम्हारा मित्र हूँ, मैंने तो तुम्हारा यह उत्तर सुनकर कुछ नहीं कहा। इसे सहन कर लिया। यदि कोई दूसरा साम के यथार्थ तत्त्व को जानने वाला विद्वान् होता, और तुम्हारे इस अशुद्ध उत्तर से असन्तुष्ट होकर तुम्हें शाप देते हुए कह देता—तुम्हारा सिर धड से गिर जाय, तो निश्चय ही तुम्हारा सिर तत्क्षण धड से गिरकर भूमि मे लोटने लगता। अतः ऐसा उत्तर फिर किसी साम के तत्त्व को जानने वाले पडित के सम्मुख मत देना।"

शिलक के इन दृढतापूर्वक वचनों को सुनकर दाल्भ्य मुनि को निश्चय हो गया, कि मेरा उत्तर यथार्थ नहीं है। मैंने जो स्वर्ग को साम का अन्तिम आश्रय निरूपण किया है, उसमें अवश्य ही कुछ त्रुटि है। ऐसा सोचकर उन्होंने बडी ही नम्रता से कहा—"क्या इससे आगे मैं श्रीमान्‌जी से कुछ पूछ सकता हूँ ? क्या सामगति परम्परा की विश्रान्ति भूमि के सम्बन्ध मे आप पूजनीय बन्धु से प्रश्न कर सकता हूँ ?"

इस पर शिलक ऋषि ने उत्तर दिया—"बडी प्रसन्नता के साथ आप जो भी पूछना चाहें पूछें।"

इस पर दाल्भ्य मुनि ने पूछा—"जो आपने मुझसे पूछा था और जिसे मैंने अति प्रश्न कहकर उत्तर नहीं दिया था, उसी को दुहराकर मैं आप से पूछना चाहता हूँ, स्वर्गलोक का आधार क्या है ?"

इसका शिलक ऋषि ने स्पष्ट उत्तर देते हुए कहा—"देखिये,

पृथ्वी पर यदि सत्कर्म किये जायँगे, तभी स्वर्गलोक की प्राप्ति सम्भव है। मनुष्य लोक के बिना स्वर्ग प्राप्त नहीं हो सकता। अतः यह मनुष्यलोक ही स्वर्ग का आधार है।"

इस पर दाल्भ्य ऋषि ने पुनः प्रश्न किया—"अच्छा, महर्षि शिलकजी! यह बताइये कि मनुष्यलोक का आधार कौन है?"

इस पर शिलक ऋषि ने कहा—"देखिये, दाल्भ्यजी! अब आप अति प्रश्न कर रहे हैं। इस मृत्युलोक को उल्लङ्घन करके साम का कोई अन्य आश्रय नहीं है। अतः मनुष्यलोक से आगे आपको प्रश्न नहीं करना चाहिये। साम की समुचित रूप से प्रतिष्ठा मनुष्यलोक ही है। साम को रथन्तर भी कहते हैं, श्रुति कहती है यह पृथ्वी ही रथन्तर साम है (इयं वै रथन्तरम्)।

जब इस प्रकार पृथ्वी को ही शिलक मुनि ने साम की अन्तिम प्रतिष्ठा-आधार कहा, तो श्रोता बने दोनों के सम्वाद को सुनने वाले पांचालाधिपति महाराज़ जीवल के पुत्र राजर्षि प्रवाहण ने बीच में ही हस्तक्षेप करते हुए कहा—"महामुनि शिलक! आप भी ऐसा न कहें, सबकी प्रतिष्ठा मनुष्यलोक को ही न बतावें। पृथ्वी को ही रथान्तर साम की अन्तिम अवधि निर्णीत न करें! तुम्हारा बताया भी अन्त वाला ही है। आप तो हमारे मित्र हैं इसलिये मैत्रीभाव से हमने आपकी यह बात सहन कर ली। यदि अन्य कोई साम की पूर्ण प्रतिष्ठा का ज्ञाता पंडित होता और आपके इस अशुद्ध उत्तर को सुनकर क्रुद्ध होकर शाप देते हुए कह देता, "कि तुम्हारा सिर धड़ से पृथक् हो जाय, तो तुम निश्चय ही बिना सिर के दिखायी देते। निश्चय ही तुम्हारा सिर धड़ से गिर जाता।"

यह सुनकर शिलक को सन्देह हुआ कि मेरा बताया हुआ प्रतिष्ठाभूत मनुष्यलोक-सम्पूर्ण प्राणियों की प्रतिष्ठाभूत पृथ्वी-

ही अन्तिम आधार नहीं है। इसलिये उन्होंने राजर्षि प्रवाहण से कहा—"क्या इस विषय की विशेष जानकारी मैं आदरणीय श्रीमान्जी से जान सकता हूँ ? क्या मैं इस सम्बन्ध में आपसे पूछ सकता हूँ ?"

यह सुनकर राजर्षि जीवल के पुत्र प्रवाहण ने कहा—"बड़ी प्रसन्नता की बात है। आप जो भी जानना चाहें, अवश्य मुझसे जान सकते हैं। आप जो भी पूछना चाहें अवश्य मुझसे पूछ सकते हैं।"

इस पर शिलक मुनि ने राजर्षि प्रवाहण से पूछा—"आपने मेरे कथन पर अपनी असहमति प्रकट की। मैंने स्वर्गलोक का आश्रय पृथ्वीलोक को बताया था और उसे समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठारूप–अन्तिम आश्रय बताया था। अब मैं आपसे पूछता हूँ इस मनुष्यलोक की गति–इसका आश्रय कौन है ?"

इस पर प्रवाहण ने कहा—"आकाश ही पृथ्वी की–इस मर्त्यलोक की–गति है, आश्रय है। कारण कि समस्त भूत आकाश से ही उत्पन्न होते हैं, आकाश में ही लय हो जाते हैं, और सभी भूतों में आकाश सबसे बृहत् है, अतः पृथ्वी का आश्रय आकाश ही है। यही परम आश्रय है, इसका आश्रय कोई नहीं।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! राजर्षि प्रवाहण ने आकाश को सबका आश्रय कैसे बताया ? आकाश तो पंच भूतों में से एक भूत है। और यह प्रपञ्चात्मक जगत् तो नाशवान् है। आकाश भी अविनाशी नहीं है, इसका भी प्रलयकाल में नाश होता है अतः सबका आश्रय उद्गीथ की अन्तिम गति–सर्वाश्रय आकाश कैसे हो सकता है ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन् ! यहाँ आकाश से भूतों में आदि भूत आकाश से राजर्षि का तात्पर्य नहीं है। यहाँ आकाश से

उनका अभिप्राय सर्वत्र प्रकाशित परब्रह्म परमात्मा से ही है। श्रुतियों में स्थान-स्थान पर आकाश शब्द से परमात्मा का ही बोध कराया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् में ही पीछे आया है, यदि यह परमात्मा आकाश के सदृश व्यापक आनन्द स्वरूप न होता, तो कौन पुरुष जीवित रह सकता था, कौन पुरुष जीवित रहकर सांसारिक सुखों को प्राप्त कर सकता था। (को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्। यतेष आकाशआनन्दो न स्यात्) इस छान्दोग्य उपनिषद् में ही आया है, आकाश नाम से प्रसिद्ध परमात्मा नाम और रूप का निर्वाह करने वाला है। (आकाशो वै नाम रूपयोर्निर्वहिता) इसलिये यहाँ पंचभूतों वाले आकाश से तात्पर्य न होकर सर्वत्र प्रकाशित या सबको प्रकाशित करने वाले अथवा जिसमें सभी चराचर विश्व अवकाश-स्थान आश्रय प्राप्त कर सके उस परब्रह्म परमात्मा से हैं। वे ही परमात्मा सबके परम आश्रय हैं उन्हीं को सर्वोत्कृष्ट प्रतिष्ठा बतायी है।"

शौनकजी ने कहा—"यदि आकाश से यहाँ तात्पर्य परब्रह्म परमात्मा से ही है तब तो सत्य ही है, क्योंकि सबके आश्रय ये प्रभु ही हैं। राजर्षि प्रवाहण ने आकाश संज्ञक इस उद्गीथ को परम उत्कृष्ट सबका आश्रय सिद्ध किया। फिर उन्होंने उस उद्गीथ की उपासना का फल क्या बताया, इसे आप और समझावें।"

सूतजी ने कहा—"मुनियो ! आकाश रूप उद्गीथ को परम उत्कृष्ट बताते हुए राजर्षि प्रवाहण ने कहा—"गाने के योग्य-उद्-गीथ-ये अनन्त-परब्रह्म परमात्मा ही, हैं। जो इस रहस्य को जानकर उन्हीं परब्रह्म परमात्म रूप उद्गीथ का गान करता है, उनकी उपासना करता है, उसका जीवन भी आकाश की भाँति परमोत्कृष्ट हो जाता है। वह अकाश स्वरूप परमात्मा की

भाँति देश, काल, वस्तु, परिच्छेद रहित होकर सर्वथा असीम हो जाता है। वह क्रमशः उत्कृष्ट लोकों को अपने अधीन कर लेता है। बड़े से बड़े लोकों को जीत लेता है।

इस विषय का मैं एक दृष्टान्त देता हूँ। जैसा मैंने उद्गीथ का आकाश रूप में निरूपण किया है उसी प्रकार उदर शाण्डिल्य ऋषि से शुनक मुनि के पुत्र अतिधन्वा ने निरूपण किया था। उसका सम्पूर्ण रहस्य बताकर उन्होंने उदर शाण्डिल्य से कहा था—"देखो, मैंने तुमसे उद्गीथ उपासना का यह रहस्य बताया, तुम इसका उपदेश अपनी मन्त्र सतति या विन्दु सन्तति को करना। जब तक तुम्हारी सन्तति के लोग इस उद्गीथ को जानते रहेंगे, तब तक उन्हें लौकिक जीवन की अपेक्षा उत्तरोत्तर विशिष्ट जीवन प्राप्त होता रहेगा। उनका जीवन सर्वसाधारण जनों से अत्यन्त उत्कृष्ट बना रहेगा। अन्त में मरने पर—परलोक में भी—उन्हें उत्तम लोकों की प्राप्ति होगी।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इस प्रकार राजर्षि प्रवाहण ने आकाश संज्ञक उद्गीथ की परमोत्कृष्टता तथा उसकी उपासना का फल बताया। उन्होंने अन्त में कहा-इस प्रकार आकाश रूप परब्रह्म परमात्मा की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ उपासना है। उद्गीथ द्वारा उन्हीं के गुणों का गान करना चाहिये। इस रहस्य को जानकर जो कोई साधक उद्गीथ द्वारा—परमात्मा की—उपासना करता है। उसका जीवन भी परमोत्कृष्ट हो जाता है। और वह मृत्यु के पश्चात् क्रमशः परमोत्कृष्ट लोक को सर्वोत्तम सर्वोपरि लोक को प्राप्त कर लेता है इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इस प्रकार मैंने यह उद्गीथोपासना सम्बन्धी आख्यायिका आपसे कही। वेद मन्त्रों का गान सविधि उसके रहस्य को जानकर ही करना चाहिये। इस विषय

की एक उपस्ति महर्षि की आख्यायिका छान्दोग्य उपनिषद् के प्रथम अध्याय के दशम खण्ड में कही गई है। आगे मैं उसी आख्यायिका का वर्णन आप से करूँगा। यह बड़ी ही शिक्षाप्रद रोचक आपद् धर्म का निर्वाह कैसे किया जाता है, इस विषय को बताने वाली आख्यायिका है, आशा है इसे आप सब दत्तचित्त होकर श्रवण करने की कृपा करेंगे।"

छप्पय

(१)

कहें प्रवाहण–शिलक ! साम तव अन्तवान है।
कहत गिरत सिर तुरत कहै यदि सामवान है॥
शिलक कहें–गति भूमि कहा है आपु बतावें।
कहें प्रवाहण–आश्रय भू आकाश कहावें॥
परबल आकाश है, आश्रय परमोत्कृष्ट यह।
करि उद्‌गीथ उपासना, पद सर्वोत्तम गहि वह॥

(२)

यह उद्‌गीथ अनन्त यथा क्रम श्रेष्ठ कहावें।
अतिघन्वा ऋषि जाइ उदर शांडिल्य सुनावें॥
तव संतति उद्‌गीथ जानि उत्तम गति पावें।
उत्तम लोकनि जाइँ सुखी जगमें बनि जावें॥
अति उत्तम जीवन बने, परलोक हु बनि जात है।
करें उपासन ब्रह्म की, सं ब्रह्महिं मिलि जात है॥

उषस्ति ऋषि तथा आपद्धर्म

[१०४]

मटचीहतेपु कुरुष्वाटिका सह जाययोपस्तिर्ह
चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ॥१॥❀

(छा० उ० प्र० अ० १० ख० १ म०)

छप्पय

चक्र पुत्र मुनि उषति देश कुरु इभ्य ग्राम में।
ओलिनि तें दुष्काल अन्न बिनु मरें देश में॥
अलप वयस लै नारि उषस्ती भूखे भटकत।
हस्तिप निरख्यो घुने उडद बैठ्यो तहँ खावत॥
मुनि बोले—हौं बुभुक्षित, हस्तिप कहि–जूठे उड़द।
'देउ वही' मुनि कूँ दये, पत्निहिँ रखि खाये उड़द॥

मनुष्य पाप पुण्य शरीर द्वारा ही करता है। फिर भी उसका फल भोगना पडता हे जीव को ही। जिस शरीर द्वारा पुण्य पाप होता है वह तो अन्त मे अग्नि में जल जाता है अथवा जीवों का आहार होकर विष्ठा वन जाता हे। तो भी कर्म शरीर को

❀ कुरुदेश मे भारी ओले पत्थर पडने से वहाँ की समस्त खेती नष्ट हो गयी थी, खेती से चौपट हुए उसी कुरुदेश के इभ्य नामक ग्राम में अपनी छोटी वय वाली पत्नी के सहित चक्र ऋषि के पुत्र उपस्ति किसी प्रकार दुर्गति अवस्था में दिन बिताते थे।

माध्यम बनाकर जीव ही अपनी भावनानुसार उसका कर्ता माना जाता है। कोई आदमी किसी वाहन द्वारा यात्रा करे तो वह वाहन की यात्रा न कहलाकर वाहन पर यात्रा करने वाले की ही यात्रा कहलावेगी। उसका पुण्य-पाप वाहन को न होकर वाहक को ही होगा। फिर भी वाहन का महत्त्व है, वाहन न हो तो यात्रा होना कठिन है। क्योंकि वाहन यात्रा का माध्यम है। इसी प्रकार जीव जो पुण्य-पाप करता है, वह शरीर के माध्यम से ही करता है। इसीलिये बार-बार शरीर की सुरक्षा पर बल दिया गया है, क्योंकि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष जो ये चार प्रकार के पुरुषार्थ हैं, इनका मूल कारण शरीर है। कभी-कभी शरीर रक्षा के निमित्त निषिद्ध आचरण भी करना पड़ता है, जिसे आपत् धर्म कहते हैं। दुष्काल पड़ने पर, देश में घोर विप्लव होने पर तथा अन्यान्य घोर संकटों के आने पर जैसे तैसे शरीर की रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि शरीर रहेगा, तो निषिद्ध कर्म का प्रायश्चित्त करके और अधिक धर्मार्जन किया जा सकता है। किन्तु आपद् धर्म के समय भी अपने कर्तव्य कर्म से पराङ्मुख न हो। जब विश्वामित्रजी घोर अकाल पड़ने के कारण, अत्यन्त बुभुक्षा से पीड़ित होकर चाडाल के यहाँ से कुत्ते के मास को चुराकर लाये। उस समय चांडाल ने उन्हें बहुत फटकारा और कहा—"ऋषि होकर ऐसा निषिद्ध खाद्य और वह भी चोरी करके खाना चाहते हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती?"

इस पर विश्वामित्र जी ने कहा—"तू मुझे धर्म मत सिखा। मैं धर्म का मर्म जानता हूँ। आज मैं यदि कुछ न खाऊँगा, तो मेरा शरीर न रहेगा। मैं जानता हूँ यह अखाद्य है और चोरी करना निषिद्ध कार्य है, तिस पर भी यदि मैं शरीर रक्षा कर सका, तो आगे प्रायश्चित्त करके इन पापों से छुटकारा पाकर अधिक

धर्म अर्जन कर सकूँगा।" यह कहकर वे उस कुत्ते के मांस को लेकर चले गये। आकर क्या उन्होंने उसे वैसे ही खा लिया? नहीं, वे अपने कर्तव्य को–सदाचार को–नहीं भूले जो केवल अपने लिये भोजन बनाता है, वह पाप खाता है। देवता, पितर, अतिथि को खिलाकर तब बचे अन्न को खाय। ऋषि ने उसी निषिद्ध वस्तु को पहिले इन्द्र को देना चाहा। इन्द्र घबड़ा गये। वे दौड़े-दौड़े आये और बोले—"मुनिवर! ऐसा निषिद्ध पदार्थ आप देवताओं को न दें, मेरे अपराध को क्षमा करें। मैं अभी वर्षा करता हूँ।" यह कहकर इन्द्र ने यथेष्ट वर्षा की अवर्षण समाप्त हो गया। समस्त प्रजा सुखी हो गयी। सुकाल हो गया। मुनि को अखाद्य पदार्थ खाना भी न पड़ा।

जो लोग आपद्धर्म के नाम पर कदाचार करते हैं। खाद्य अखाद्य सभी खाने लगते हैं, वे तो क्रूर पुरुष हैं, अपनी वासनाओं की पूर्ति के हेतु मनमाना व्यवहार करते हैं, स्वेच्छाचार वर्तते हैं। उन लोगों की बात तो छोड़ दो। वास्तव में जो आपत्ति में ग्रस्त हैं और केवल धर्म रक्षार्थ ही शरीर को रखना चाहते हैं, तो उस समय कुछ सदाचार के विरुद्ध भी आचरण करना पड़े, तो वे निन्दा के पात्र कभी नहीं कहलाते। क्योंकि उन्होंने जान-बूझकर स्वेच्छा से कदाचार नहीं किया है। अत्यन्त विवश होकर केवल शरीर रक्षा के निमित्त आपद्धर्म का निर्वाह किया है। इसका निर्णय दूसरा कोई नहीं कर सकता, वे स्वतः ही निर्णय कर सकते हैं कि ऐसा किये बिना शरीर निर्वाह नहीं हो सकता था।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वेद मन्त्रों के सम्बन्ध में मैं पीछे कह आया हूँ, कि उद्गाता को वेदों के गान करते समय वेदमन्त्र के ऋषि, देवता, छन्द, विनियोग तथा अर्थ का ज्ञान होना चाहिये। ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत स्वरों का ध्यान रखकर मन्त्रोचा-

रण करना चाहिये। जो बिना इस रहस्यों को जाने केवल देखा देखी यज्ञों का कार्य कराते हैं, उनके द्वारा की हुई प्रक्रिया से यजमान की इष्ट सिद्धि नहीं होती। इसी विषय पर उपस्ति ऋषि का आख्यान कहते हैं। इसी प्रसग मे उन्होंने आपद्धर्म समझकर सदाचार के विरुद्ध आचरण करके भी कैसे शरीर रक्षा की, इस घटना को प्रथम सुनाते हैं।

कुरुदेश मे सम्पूर्ण वेदों के विद्वान् महर्षि चक्र रहते थे, उन्हीं के एक पुत्र थे उनका नाम था उपस्ति। महर्षि उपस्ति वेदो के सुप्रसिद्ध ज्ञाता थे, कर्मकाड मे स्नात थे। कर्मकाड मे उनकी बडी ख्याति थी, बडे बडे यज्ञों में वे ऋत्विज् कार्य के लिये बुलाये जाते थे। वे महर्षि कुरुदेश के इभ्य नामक ग्राम मे निवास करते थे। इभ कहते हैं हाथी को। हाथियो को जो पालें-पोसें वे इभ्य हाथी वाले कहलाते हैं। अर्थात् वह इभ्य ग्राम हाथी पालने वालों का ग्राम था। उस ग्राम मे वे अपनी छोटी अवस्था वाली आटिकी पत्नी के साथ रहते थे।"

शौनकजी ने कहा—"आटिकी का अभिप्राय क्या है ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन! प्राचीन काल मे विवाह दो प्रकार की स्त्रियों के होते थे। एक तो प्राप्त वयस्काओं के दूसरे अप्राप्य वयस्काओं के। जब तक स्त्री के रजोधर्म नहीं होता, तब तक उसकी सज्ञा कन्या होती है। कन्यादान तभी तक प्रसस्त माना जाता है, जब तक लडकी को मासिक धर्म न हुआ हो। आठ वर्ष की कन्या की 'गौरी' सज्ञा है, नव वर्ष वाली की 'रोहिणी' संज्ञा है। दश वर्ष वाली की 'कन्या' सज्ञा है। वह कन्या तब तक बनी रहती है, जब तक कि वह रजस्वला न हो जाय। रजस्वला—मासिक धर्म—हो जाने पर उस का कन्यापन नष्ट हो जाता है, फिर वह अप्राप्त वयस्का न रह

कर प्राप्त वयस्का हो जाती है। तब उसे स्त्रियोचित स्तनादि निकलने लगते हैं। उसकी 'व्यञ्जस्तनी' भी संज्ञा है। जो लोग कन्यादान के महान् पुण्य को प्राप्त करना चाहते थे, वे लोग दश वर्ष से पूर्व ही अपनी पुत्री का विवाह किसी योग्य वर के साथ कर दिया करते थे। अथवा यज्ञों में दक्षिणा स्वरूप यजमान सुयोग्य ऋत्विजों को अपनी कन्या का दान कर देते थे। प्रायः क्षत्रियों की कन्यायें (यहाँ कन्या शब्द से अविवाहित पुत्री से प्रयोजन है) जिनका स्वयंवर होता था। युवती होने पर ही विवाह होता था, जिससे वे स्वयं अपनी इच्छानुकूल पति का वरण कर सकें। ब्राह्मणादि की कन्याओं का कन्यादान दश वर्ष से पूर्व ही उनके पिता माता कर दिया करते थे। उपस्ति ऋषि का भी विवाह ऐसी ही अप्राप्त वयस्का कन्या से हो गया होगा, अथवा किसी यज्ञ में दक्षिणा रूप में वह विवाह के निमित्त कन्या मिली होगी। इसीलिये उसकी 'आटिकी' संज्ञा दी गयी है। (आटिक्या अनुपजात पयोधरादि स्त्री व्यञ्जनया)।

उपस्ति मुनि असंग्रही ब्राह्मण थे, वे यज्ञादि में जो दक्षिणा मिल जाती होगी, उसी से निर्वाह करते होंगे, अथवा भिक्षा में जो अन्न मिल जाता होगा उससे काम चलाते होंगे। वे एक ग्राम से दूसरे ग्राम में अपनी अप्राप्त वयस्का पत्नी के साथ भ्रमण करते रहते होंगे। संयोग से हस्तियों के उस इभ्य नामक ग्राम में किसी महस्थी के घर में उसके आश्रित होकर रह रहे होंगे। उस समय कुरुदेश भर में इतने ओले और पत्थर गिरे, कि धान की— अन्न की— समस्त खेती नष्ट हो गयी। प्रजा के लोग भूखों मरने लगे। उन दिनों एक देश से दूसरे देश में शीघ्र ही अन्नादि पहुँचाने के सुलभ साधन नहीं थे। अतः जिस देश पर विपत्ति आती उसे उसी देश के लोग सहन करते अथवा देश छोड़कर दूसरे

राजा के देश में चले जाते। ऐसी दशा में भिक्षा पर ही निर्वाह करने वाले उपस्ति मुनि को अन्न कौन देता। जब प्रजाजनों के पास स्वयं ही खाने को अन्न नहीं था। प्रतीत होता है उपस्ति मुनि को बड़े दिनों से अन्न उपलब्ध नहीं हुआ था। जब उनकी भूख असह्य हो गयी। तब वे अपनी अल्पवयस्का पत्नी को घर पर ही छोड़कर भिक्षा के लिये बाहर निकले। किसी के यहाँ अन्न नहीं था। एक हस्तिप के यहाँ पुराने घुने हुए गत वर्ष के उड़द रखे थे। भूख के कारण वह उन घुने हुए उड़द के दानों का ही चबा रहा था। तब तक उसके यहाँ ये महामुनि उपस्ति भी पहुँच गये। उसे घुने उड़द चबाते देखकर मुनि ने कहा—"भैया! हमें भी कुछ खाने को अन्न दे दो।"

हस्तिप सज्जन तथा आस्तिक पुरुष था, भोजन के समय एक सुयोग्य अतिथि आ जाय, और उसे कुछ न दिया जाय, तो यह अनुचित है, किन्तु अब इतने श्रेष्ठ ब्राह्मण को दें भी तो क्या दें? उसके पास उतने ही उड़द के दाने थे, जो उसके उच्छिष्ट पात्र में अवशेष थे। उसने विनम्रता के साथ कहा—"ब्रह्मन्! मैं अत्यन्त लज्जित हूँ। अन्न की इच्छा रखने वाले आप इतने योग्य अतिथि का आतिथ्य करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। विप्रवर! मेरे पास ये गत वर्ष के इतने ही घुने हुए उड़द थे। आज जब मैं खाने बैठा, तो अपने उच्छिष्ट पात्र में सबके सब उड़द उड़ेल लिये। इसी पात्र में से मैं ले लेकर खा रहा हूँ। ये सब उच्छिष्ट दाने हैं। आप योग्य ब्राह्मण हैं, मैं आपको अपने जूठे उड़द कैसे दे सकता हूँ?"

यह सुनकर उपस्ति मुनि ने कहा—'देखो, भैया! भूख के मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। इन प्राणों की तो किसी प्रकार

रक्षा करनी है, तुम अब जूठे कूठे का विचार छोड़ दो। तुम्हारे पास जैसे भी उड़द हैं, उन्हीं मे से मुझे दे दो।"

ब्राह्मण के मुख से ऐसी बात सुनकर हस्तिप को दया आ गयी। उसने जितने भी उसके पात्र मे उड़द थे, सबके सब उपस्ति मुनि को दे दिये। उड़द देने के अनन्तर उस हस्तिप ने कहा—"ब्रह्मन्! विराजें, उडद खाकर इस जल को पी लें।"

तब उपस्ति मुनि ने कहा—"भैया! तुमने बड़ी दया की जो उडद दे दिये। मैं जूठा जल नहीं पी सकता। क्योंकि तुमने इस जल पात्र को जूठे हाथों से छू लिया है। इस जल को पीने पर मुझे उच्छिष्ट जल पीने का पाप लग जायगा।"

हस्तिप ने आश्चर्यचकित होकर कहा—"ब्रह्मन्! आप कैसी बात कर रहे हैं। जूठे उडद खाने पर तो आप को दोप न लगेगा और इस जल के पीने से दोप लग जायगा? यह कैसी उल्टी बात है? गुड़ खाइ गुलगुलाओं से बचत करे"

उपस्ति ऋषि ने कहा—"देखो, भैया! ये उड़द तो मैं आपद् धर्मानुसार खा रहा हूँ। कई दिनों से मुझे आहार नहीं मिला है, यदि मैं इन उच्छिष्ट उड़दों को न खाऊँ तो मैं जीवित नहीं रह सकता। इसलिये इन्हें तो विवश होकर-केवल प्राण रक्षा के निमित्त-मुझे खाना पड़ रहा है। रही पानी की बात सो, पानी तो नदी, तालाब कूपो मे सर्वत्र सुलभ है। पानी तो सर्वत्र मिल सकता है। वह सहज प्राप्त है, जब वह सर्वत्र मिल सकता है तो तुम्हारे उच्छिष्ट जल को क्यों पीऊँ?"

यह कहकर ऋषि उड़द लेकर चले गये। जलाशय के निकट जाकर उन्होंने उड़द खाये। भर पेट जल पिया। जब कुछ पेट में पड़ा, प्राणों में प्राण आये तब उन्हें अपनी पत्नी की याद आई। वह भी तो भूखी होगी। जो बचे हुए उड़द हैं उन्हें

के लिये ले चलूँ ? यह सोचकर वे बचे हुए उड़दों को वस्त्र में बाँधकर घर की ओर चले।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! हस्तिप जो शूद्र जाति के होते है, उनके उच्छिष्ट उड़दों को इतने बड़े वेदज्ञ महर्षि ने क्यों खाया ? धर्म की रक्षा के निमित्त यदि प्राण चले भी जाते तो क्या हनि थी ?"

सूतजी ने कहा—"मुनिवर ! शरीर में प्राण ही सर्वोत्तम हैं, प्राणो की रक्षा सभी प्रकार से करनी चाहिये। प्राण रहेंगे तो मनुष्य और भी उत्तमोत्तम धर्मों का पालन कर सकेगा, प्रायश्चित्त करके सैकड़ो कल्याणप्रद कार्यों को देख सकेगा। (जीवन्नरो भद्रशतानि पश्यति) बात यह है, कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ शरीर में प्राण रहेंगे, तभी तो सिद्ध होंगे, अतः मुख्य धर्म को न छोड़कर उपधर्मों में कुछ शिथिलता भी करनी पड़े, तो उसे करके सभी प्रकार से प्राणों की रक्षा करनी ही चाहिये। प्राणों की रक्षा करना परमधर्म है, और जान बूझकर प्राणों का हनन करना घोर पाप है। ऐसा नीतिकारों का वचन है।* इसलिये उच्छिष्ट सूखे अन्न को प्राणों की रक्षार्थ खा भी लिया तो इसमें दोष क्या है ? यह प्राण रक्षारूप धर्म है। यही सोचकर वेदज्ञ ऋषि ने प्राण रक्षा को श्रेष्ठ समझकर ऐसा किया।

उनका पेट भरा नहीं था, प्राणों का आधार मात्र हो गया था, इसलिये शेष उड़दों को उन्होंने लाकर अपनी पत्नी को दे दिया और शैया पर पड़ गये।

---

* धर्मार्थ काममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः।
तान् निघ्नता किं न हतं रक्षता किं न रक्षितम् ॥
(हितोपदेश)

इधर जब उपस्ति ऋषि भिक्षा को गये, तो उस छोटी बच्ची पर किसी ने दया करके उसे सुन्दर-सुन्दर पदार्थ लाकर भिक्षा करा दी और कह दिया—"तुम्हारे पति तो सायंकाल तक आवेंगे कहीं-न-कहीं भिक्षा पा ही जायेंगे। तुम भर पेट भिक्षा कर लो।" अतः उस छोटी बच्ची ने उनके कहने पर भिक्षा कर ली थी। इसलिये पति के दिये हुए उडदों को उसने बाँधकर रख दिया।

दूसरे दिन उपस्ति ऋषि शैया त्यागकर जब नित्य कर्मों से निवृत्त हो गये। तब उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—"देखो, कैसा दुर्भिक्ष पड गया है, सब लोग एक-एक दाने अन्न के लिये दुखी हो रहे हैं। मेरे शरीर में तनिक भी शक्ति नहीं है। मैंने सुना है अमुक राजा समीप में ही एक बडा भारी यज्ञ कर रहा है। यद्यपि उसने अपने यज्ञ में मुझे बुलाया नहीं है, तो भी मैं वहाँ बिना बुलाये भी जा सकता था, क्योंकि शास्त्र की आज्ञा है-बिना बुलाये भी यज्ञ में चला जाय।* किन्तु वहाँ तक जाने की मुझमें शक्ति ही नहीं। इस समय यदि थोडा सा अन्न मिल जाता, तो मैं उसे खाकर वहाँ चला जाता।"

अपने पति की इस बात को सुनकर ऋषि पत्नी ने कहा—"स्वामिन्! कल जो आपने लाकर मुझे उडद दिये थे, वे मेरे पास ज्यों के-त्यों सुरक्षित रखे हैं। लीजिये, इन्हें खाकर आप मेरे साथ यज्ञ में चलिये।"

यह सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने उन उडदों को खाकर पानी पिया, और वे अपनी पत्नी को साथ लेकर शनैः-शनैः राजा के यज्ञ की ओर चलने लगे और कुछ ही काल में राजा की विशाल यज्ञशाला के मंडप में पहुँच गये।

---

* अनाहूतोऽध्वरं गच्छेत् (महाभारते)

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अब यज्ञशाला में जाकर उपस्ति मुनि ने जो अपनी कर्मकाण्ड विद्या का चमत्कार दिखाया उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

हस्तिप पानी दयो न सो मुनि ने स्वीकार्यो।
पानी सब थल सुलभ अन्न बिनु ही हौं हार्यो॥
शेष उड़द घर लाइ दये पत्नी सो राखे।
ताकूँ भिक्षा मिली उड़द धरि वचन न भाखे॥
कह्यो प्रात मुनि अन्न यदि, मिलै नृपति मख जाइकें।
द्रव्य लहूँ सुनि पत्नि ने, दये उड़द सो लाइकें॥

उषस्ति मुनि का राजा के यज्ञ में जाना

[१०५]

तत्रोद्‌गातृनास्तावे स्तोष्यमाणानुपोपविवेश—
स ह प्रस्तोतारमुवाच ॥*

(छा० उ० प्र० प्र० १० खं० ८ मं०)

छप्पय

उड़द खाइ चलि दये नृपति मख में मुनि आये ।
प्रस्तोता तैं कहे स्तवन बिनु जानि सुनाये ॥
तो तव सिर गिरि जाय यही बच सबनि बताये ।
सब ऋत्विज डरि गये जानि नृप वरन कराये ॥
मुनि बोले - इनि सबनि कूँ, देहिँ दक्षिणा मम सरिस ।
मम संरक्षण में करें, यज्ञ कार्य ये ही विहँसि ॥

पण्डितों की सभा में गुणियों का आदर तब तक नहीं होता, जब तक वे अपनी विद्वत्ता को प्रकट न करें। वाणी द्वारा ही विद्वान् तथा मूर्ख की पहिचान होती है। सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित बड़ी धोती बड़ी पोथी और बड़ी पगड़ी धारण किये हुए मूर्ख भी पण्डितों के समाज में जाकर बैठ जाय,

---

* राजा के यज्ञ मे जाकर उपस्ति मुनि वहाँ बैठ गये जहाँ प्रस्तोता प्रास्ताव (स्तुति) कर रहे थे। उन्होंने स्तुति करते हुए प्रस्तोता से यो कहना आरम्भ किया।

तो उसकी भी तब तक प्रतिष्ठा होगी, जब तक वह कुछ बोले नहीं। पंडितों की सभा में सजे-बजे मूर्खों का तभी तक आदर होता है, जब तक वे मौन धारण करे रहें। अज्ञता को ढकने के लिये विद्वत् समाज में मौन सबसे बड़ा भूषण है। जहाँ उन्होंने बोलना आरम्भ किया तहाँ उनकी पोलपट्टी खुल जाती है। वाणी द्वारा ही विद्वान्–मूर्ख की–कुलीन अकुलीन की पहिचान होती है। इसके विपरीत साधारण वेषभूषा में कोई विद्वान् भी जाकर समाज में बैठ जाय, तो सभासद लोग तभी तक उसके वेषभूषा को देखकर उसकी उपेक्षा करेंगे, जब तक वह कुछ बोले नहीं। जहाँ उसने अपने शास्त्र ज्ञान का परिचय दिया, तहाँ सभी सभासद् उसका आदर करने लगेंगे, उससे उच्चासन पर बैठने का आग्रह करेंगे। इसीलिए वाग्देवी को सरस्वती कहा है। वाणी द्वारा ही विद्वान् मूर्ख की पहिचान होती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उद्‌गीथ से ही सम्बन्धी प्रस्ताव प्रतिहार विषयक उपासना को बताने के निमित्त ही उषस्ति ऋषि की आख्यायिका का वर्णन किया जाता है। उषस्ति महर्षि ने पत्थर ओले से दग्ध कुरु देश में आपद्धर्म द्वारा किस प्रकार अपने प्राणों की रक्षा की, इस प्रसंग को पीछे बता ही चुके हैं। जब प्रातःकाल उषस्ति मुनि ने अपनी अल्पवयस्का पत्नी से कहा—"मेरे शरीर में अन्न के बिना चलने की शक्ति नहीं है। यदि इस समय कुछ अन्न खाने को मिल जाता, तो मैंने सुना है, समीप ही कोई राजा बड़ा भारी यज्ञ कर रहा है। यज्ञ में बहुत से विद्वान् ब्राह्मण वरण किये जाते हैं। उनमें ब्रह्मा (चारों वेदों के ज्ञाता) अध्वर्यु (यजुर्वेद के ज्ञाता) उद्‌गाता (सामवेद के गायक) होता (ऋग्वेद के ज्ञाता) ये चार तो मुख्य होते हैं। इनके अतिरिक्त प्रशास्ता, प्रतिस्थाता, ब्राह्मणाच्छंसी, प्रस्तोता,

आच्छावक, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रतिहर्ता, ग्रावस्तुत, होता, नेता और सुब्रह्मण्य ये बारह ऋत्विज् इनके सहायक ऋत्विज् होते हैं। मैं चारो वेदो का ज्ञाता हूँ, राजा के यज्ञ मे जाने पर मुझे इनमें से कोई-न-कोई पद अवश्य प्राप्त हो जाता। किन्तु जाऊँ कैसे मुझमें तो अन्न के बिना चलने की शक्ति ही नही।"

ऋषि पत्नी ने कहा—"यज्ञ मे आपको बुलाया तो नहीं है। अनिमन्त्रित यज्ञ मे कैसे जायँगे ?"

उपस्ति मुनि ने कहा—"प्रिये! यज्ञ के लिये निमन्त्रण की प्रतीक्षा न करे। यज्ञ मे तो अनिमन्त्रित भी जाया जा सकता है।"

तब ऋषि पत्नी आटिकी ने कहा—"स्वामिन्! आप ने जो मुझे कल उडद दिये थे, वे मैंने ज्यो-के-त्यों रख छोडे हैं। उन्हें खाकर आप उस महायज्ञ मे जायँ।"

यह सुनकर ऋषि को परम प्रसन्नता हुई। वे उडदों को खाकर पानी पीकर शनैः शनैः राजा के यज्ञ मे गये। वहाँ जाकर जिस स्थान मे उद्गाता ऋत्विज् लोग स्तुति करते हैं, उस स्थान में जाकर ऋत्विजों के समीप बैठ गये। जब प्रस्तोता स्तुति करने को उद्यत हुआ, तब उपस्ति ऋषि ने उससे कहा—"देखिये, प्रस्तोता-जी! आप जिस देवता की स्तुति करना चाहते हैं, जिस देवता से इस प्रस्ताव का सम्बन्ध है, उसे बिना जाने यदि तुम उसकी स्तुति करोगे, तो इस अज्ञानपूर्वक की गयी स्तुति के कारण मेरे कहने से तुम्हारा सिर धड से पृथक् होकर गिर जायगा।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! यज्ञ मे तो सभी प्रकार के ऋत्विज् होते हैं। बहुत से ऐसे ऋत्विज् होते हैं, जो वेदमन्त्रो का उच्चारण तो यथाविधि करते हैं, किन्तु उनके अर्थों को भली भाँति नहीं जानते। बहुत-से अक्षर और अर्थ दोनों को जानते

हैं। दोनो ही मन्त्रों के अक्षरों की सहायता से कर्म करते हैं। फिर उषस्ति ऋषि ने यह क्यों कहा कि बिना जाने तुम स्तुति के मन्त्र बोलोगे तो तुम्हारा सिर धड़ से पृथक हो जायगा ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! आप का कथन यथार्थ है, पीछे छान्दोग्य उपनिषद् मे ही कह आये हैं, कि जो अक्षर को इस प्रकार अर्थ सहित भली-भाँति जानता है, और जो अर्थ को न जानकर केवल मंत्र की—अक्षर की— सहायता से ही यज्ञीय कर्म करते हैं, तो अक्षर की सहायता से अर्थ जानने वाले बिना अर्थ जानने वाले दोनों ही यज्ञीय कर्म करा सकते हैं। यह उसी दशा में सम्भव है, जब वहाँ कोई अर्थ विशेषज्ञ न हो, तब तो बिना अर्थ जाने भी केवल मन्त्र से कर्म कराने से काम चल जायगा। किन्तु जहाँ अर्थ विशेषज्ञ बैठा है, तो उसकी उपस्थिति मे ऐसा साहस करना अनुचित है। जो अर्थ नहीं जानता, उसे अपने पास मे बैठे अर्थ विशेषज्ञ से प्रार्थना करनी चाहिये आप ही अमुक देवता की स्तुति करें, क्योंकि आप मुझसे अधिक विद्वान् हैं, इसके अर्थ के विशेषज्ञ हैं, इसीलिये उपस्ति मुनि ने प्रस्तोता को चेतावनी दी, उसे सचेत कर दिया। केवल प्रस्तोता को ही नहीं उस यज्ञ मे जो सामवेद के उद्गाता थे उनसे भी यही बात कह दी—"देखिये, उद्गाता जी! तुम सामवेद के मन्त्रों से जिस देवता की स्तुति का गान करो, तथा जिस मन्त्र से जिस देवता से सम्बन्ध है-जिसका उद्गीथ द्वारा तुम उद्गायन करो, यदि उसका अर्थ बिना जाने तुम गायन करोगे, तो निश्चय ही तुम्हारा सिर धड़ से पृथक् होकर गिर जायगा।"

यही बात उन्होंने प्रतिहर्ता ऋत्विज् से कही—"सुनिये, प्रतिहर्ता जी! जिस देवता का तुम्हारे प्रतिहार से सम्बन्ध है। उसे

बिना जाने तुम प्रतिहार करोगे, तो तुम्हारा सिर धड से पृथक् हो जायगा।"

शौनकजी ने पूछा—"प्रतिहार क्या ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! सामवेद के जिस भाग को उद्गाता गाता है, उसे 'उद्गीथ' के नाम से पुकारा जाता है। जिस भाग को प्रस्तोता गाता है उसे प्रस्ताव कहा जाता है और जिसे प्रतिहर्ता गाता है, उसे प्रतिहार कहते हैं। ये तीनों ही गायन हैं। उपस्ति मुनि ने प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता तीनों को ही चुनौती दी। वास्तव में ये तीनों ही अर्थ विशेषज्ञ नहीं थे, वे लोग केवल मन्त्रों की ही सहायता से यज्ञीय कर्म कराते थे। जब उपस्ति मुनि ने उनसे दृढतापूर्वक ऐसी बात कही, तब वे समझ गये, यह कोई हमसे विशेष विद्वान् मन्त्रार्थ ज्ञाता मुनि हैं, अत. वे सबके सब अपने-अपने कार्यों से उपरत होकर चुपचाप बैठ गये।

जो यजमान राजा यज्ञ करा रहा था और यजमान के स्थान पर बैठा था, जब उसने देखा—"मेरे यज्ञ कराने वाले उद्गाता, प्रस्तोता तथा प्रतिहर्ता आदि ऋत्विज् नवीन आये हुए ऋषि के वचनों को सुनकर अपने अपने कर्मों से उपरत होकर चुपचाप बैठ गये हैं, तो अवश्य ही यह नवागन्तुक ऋषि इन सबसे भारी विद्वान् कर्मकाडी तथा यज्ञ कर्मों मे कुशल याज्ञिक है।" यह सोचकर उसने उपस्ति मुनि से बडे ही आदर सत्कार और श्रद्धा-पूर्वक पूछा—"क्या मैं भगवान् का पूरा परिचय प्राप्त कर सकता हूँ ?"

यह सुनकर उपस्ति ऋषि ने कहा—"राजन! मेरे पिता सुप्रसिद्ध परम विद्वान् चक्र ऋषि हैं। मैं उन्हीं का पुत्र हूँ, मेरा नाम उपस्ति है।"

उपस्ति ऋषि का नाम सुनकर राजा चौंके, वे सहसा खड़े हो गये और दोनों हाथों की अञ्जलि बाँधकर विनम्रता के साथ कहने लगे—"भगवन ! मेरा यज्ञ धन्य हुआ, मैं स्वयं कृतार्थ हो गया। आप सत्य मानें अपने इस यज्ञ में समस्त ऋत्विज् सम्बन्धी कार्यों के निमित्त मैं भगवान् को ही वरण करना चाहता था। आपकी विद्वत्ता की ख्याति मैंने पहिले से ही सुन रखी थी। मैंने अनेकों स्थानों पर अपने आदमी भेजकर भगवान् को खुजवाया था। आप परम पूजनीय ऋषि का सर्वत्र अन्वेपण कराया था। जब आप बहुत खुजवाने पर भी नहीं मिले तब मैंने दूसरे ऋत्विजों का वरण किया। जो महानुभाव बहुत अन्वेपण करने पर भी नहीं मिले थे वे ही अकस्मात् आज बिना बुलाये मेरे इस यज्ञ मे पधार गये, मैं अपने भाग्य की किन शब्दों मे सराहना करूँ ? हे भगवन् ! अब जब आपने मुझ सेवक पर इतनी अहैतुकी कृपा की है, स्वयं ही यहाँ तक बिना बुलाये पधारने का कष्ट किया है, तो अब आप ही इस यज्ञ के समस्त ऋत्विज् सम्बन्धी कार्यों को सम्हालें। आप ही इस यज्ञ के प्रधानाचार्य बनकर मुझसे यज्ञ सम्बन्धी कार्य करावें।"

राजा की विनम्र प्रार्थना सुनकर उपस्ति मुनि प्रसन्न हुए। वे तो यह चाहते ही थे, इसीलिये वे यहाँ आये थे, अतः वे राजा से बोले—"अच्छी बात है, राजन् ! मैं आपके प्रस्ताव को स्वीकार करता हूँ। अब यज्ञीय समस्त कार्य मेरी ही देख-रेख में हों। किन्तु एक बात है, ये पहिले वरण किये हुए ऋत्विज् हटाये न जायँ, ये अपने-अपने पदों पर पूर्ववत् ही प्रतिष्ठित रहें। इन्हें दक्षिणा भी उतनी ही मिले, जितनी मुझे मिले।"

राजा ने कहा—"तथास्तु, जैसी भगवान् आज्ञा करेंगे वैसी

ही सब बातें होंगी। अब यज्ञ सम्बन्धी कार्य सम्पन्न होने चाहिये।"

राजा की बात सुनकर सभी ऋत्विज् परम प्रसन्न हुए। अब उपस्ति मुनि ने प्रथम प्रस्तोता से कहा—"हाँ तो आप प्रस्ताव करें-आप जिस देवता की स्तुति-प्रस्ताव-कर रहे थे, उसे आरम्भ करें।"

यह सुनकर प्रस्तोता उठकर उपस्ति मुनि के निकट आकर प्रस्ताव के सम्बन्ध में कुछ पूछने लगा।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! अब प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता आदि ऋत्विजों का तथा उपस्ति ऋषि का जो सम्वाद होगा उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

ऋषि उपस्ति कूँ पाइ नृपति अति ई हरषाये।
यज्ञ प्रथम ही दूत भेजि ऋषि बहु ढुँढवाये॥
जब उपस्ति नहिँ मिले वरन दूसर ऋषि कान्हें।
आये स्वय उपस्ति प्रथम आचारज कीन्हें॥
तब प्रस्तोता ऋषि निकट, पूछत सो को देव वह।
मुनि उपस्ति कहबे लगे, प्राण देव है वही यह॥

उषस्ति मुनि का यज्ञ में ऋत्विजों से सम्वाद

[१०६]

अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥*

(छा० उ० प्र० प्र० ११ ख० ४ म०)

छप्पय

प्राणहिँ तैं सब भूत होहिँ अनुगत प्रस्तावहिँ ।
बिनु जाने प्रस्ताव करत तो मस्तक गिरिहहिँ ॥
पुनि उद्गाता आइ प्रश्न उद्गीथ सुनायो ।
तब उषस्ति आदित्य देव उद्गीथ बतायो ॥
है अनुगत उद्गीथ तिहिँ, पुनि प्रतिहर्ता आइकें ।
कर्यो प्रश्न प्रतिहार को? बोले मुनि हरषाइकें ॥

---

* तदनन्तर यज्ञ में जो प्रस्ताता का कार्य कर रहे थे, वे महर्षि उषस्ति के समीप विनम्रता से आकर पूछने लगे—"भगवान् ने मुझसे कहा था, कि हे प्रस्तोता ! तुम प्रस्ताव में अनुगत देवता को बिना जाने प्रस्तवन—स्तुति करोगे, तो तुम्हारा सिर धड से पृथक् होकर गिर जायगा । तो अब मैं यह जानना चाहता हूँ वह देवता कौन है ?"

उपनिषदों में प्राण की, आदित्य की और अन्न की बड़ी महिमा गायी है। इन्हें साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ही बताया है। वास्तव मे ब्रह्म तो– प्राण, आदित्य तथा अन्न से परे हैं, किन्तु शरीर में प्राण सर्वश्रेष्ठ है, इन्द्रियों के न रहने पर किसी प्रकार कार्य चल सकता है, किन्तु प्राण न रहे, तो शरीर का कोई भी अंग कार्य करने में समर्थ नहीं हो सकता। प्राण ही जीवनी शक्ति है। इसीलिये प्राण रूप मे परब्रह्म की उपासना की जाती है। प्राणों को ही परब्रह्म स्वरूप मानकर उसका याज्ञिक लोग यशोगान करते हैं, किन्तु वास्तव मे प्राण ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप नहीं है। परब्रह्म तो प्राणों से सर्वथा अतीत है। इससे यही समझना चाहिये कि जो प्राणों का प्राण है, जो प्राणों को प्रणयन करता है, जिसकी प्रेरणा से प्राण सर्वत्र विचरण करता है, जो प्राणों का ज्ञाता, प्रेरक तथा शक्ति प्रदाता है, वही परब्रह्म है।

यही बात आदित्य के सम्बन्ध में समझनी चाहिये। सूर्य मंडलवर्ती जिस पुरुष की उपासना बतायी गयी है, वास्तव में वह ब्रह्म नहीं है, किन्तु उसकी उपासना से ब्रह्म का ज्ञान होता है, आदित्य उसी की प्रेरणा से सबको प्रकाश प्रदान करता है, जिससे सभी प्राणी जीते हैं।

यही बात अन्न के संबध मे भी है। अन्न को भी ब्रह्म मानकर उसकी उपासना का विधान है। अन्न को परब्रह्म स्वरूप मानकर उसकी स्तुति की गयी है। अन्न होता है, पृथ्वी जल और तेज की सहायता से। अन्न से ही प्राणों का तर्पण होता है, अन्न को प्राण ही शरीर के सभी स्थानों में पहुँचाते हैं, अन्न ही जीवन है, किन्तु परब्रह्म इस लौकिक अन्न से सर्वथा अतीत है। यहाँ कहना अधिक उपयुक्त होगा, कि जिसकी प्रेरणा से अन्न में अन्नत्व आता है, जो अन्न का ज्ञाता, प्रेरक को शक्ति प्रदान

करने वाला है वही परब्रह्म है किन्तु परब्रह्म परमात्मा का तो कोई एक रूप निश्चित है नहीं। उसकी जिस रूप से उपासना करो, वह उसी से फल प्रदान करता है। इसीलिये वेदों में नाना रूपों से-विविध देवताओं को लक्ष्य करके उसकी स्तुति का गान किया गया है। किसी रूप से, किसी नाम से उस परब्रह्म की स्तुति करो, प्राप्त उसी को होगी, क्योंकि सत्य स्वरूप परमात्मा तो एक ही है, उसे विद्वान् लोग अनेक रूपों में कथन करते हैं। (एकः सद् विप्राः बहुधा वदन्ति)

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! उषस्ति ऋषि को राजा ने अपने यज्ञ का प्रधानाचार्य वरण कर लिया। तब उषस्ति मुनि ने प्रस्तोता से कहा—"अच्छी बात है, तुम जिस देवता का प्रस्ताव-स्तुतिगान कर रहे थे, उसे करो।"

यह सुनकर प्रस्तोता प्रधानाचार्य बने उन उषस्ति ऋषि के समीप अत्यन्त ही विनम्र भाव से आया और शिष्य भाव से आदर के साथ कहने लगा—"जब मैं प्रस्ताव-स्तुति करने वाला था, तब भगवान् ने मुझसे यह कहा था तुम जिस देवता के मंत्रों द्वारा स्तुति करने जा रहे हो, उस देवता को बिना जाने तुम स्तुति करोगे, तो तुम्हारा सिर धड़ से पृथक हो जायगा।" इसलिये मैं जानना चाहता हूँ, वह मन्त्रोक्त देवता कौन है। आपके द्वारा उस देवता का परिचय प्राप्त करके तब मैं प्रस्ताव-स्तुति करूँगा।"

प्रस्तोता के शिष्य भाव से विनम्रतापूर्वक पूछे प्रश्न के उत्तर में उषस्ति मुनि ने कहा—"भैया! तुम जिस देवता की स्तुति करने जा रहे हो, वह प्राण देवता है। देखो, शरीर का आधार प्राण ही है। प्रलयकाल में प्राणी प्राणरूप होकर ही प्राण में विलीन होते हैं और पुनः सृष्टिकाल में प्राणरूप होकर ही

उत्पन्न होते हैं। तुम्हारी स्तुति का अनुगत देवता वही मुख्य प्राण है। अब तुम प्राण का परिचय पाकर-उनके सम्बन्ध में जानकर निर्भय होकर स्तुति करो। यदि तुम इस देवता का बिना परिचय प्राप्त किये मेरे सम्मुख स्तुति करते, तो निश्चय ही मेरे कहने पर तुम्हारा सिर धड से अवश्य ही पृथक हो जाता। अब कोई बात नहीं है। अब तुम प्राणदेव की अपने गायन द्वारा स्तुति आरम्भ करो।"

उपस्ति ऋषि की आज्ञा से प्रस्तोता ने अपना प्रस्ताव किया। अर्थात् उन्होंने प्राणदेव की मन्त्रों द्वारा सविधि स्तुति की।

तदनन्तर उन्होंने उद्गाता से कहा—"तुम जिस उद्गीथ का गायन करना चाहते थे, उसका गायन करो।"

यह सुनकर उद्गाता भी शिष्य भाव से आकर नम्रतापूर्वक उपस्ति मुनि से पूछने लगा—"भगवन्! मुझसे भगवान् ने कहा था, जिस देवता को अनुगत करके तुम उद्गीथ का गायन करना चाहते हो यदि उस देवता का बिना जाने तुम गायन करोगे, तो मेरी आज्ञा से तुम्हारा सिर धड से पृथक् हो जायगा। अतः मैं आपके द्वारा यह जानना चाहता हूँ, कि जिसको लक्ष्य करके उद्-गाता उद्गीथ का गायन करता है, वह देवता कौन है?"

यह सुनकर उपस्ति मुनि ने कहा—"वह देव आदित्य है। जितने देवर्षि ब्रह्मर्षि, ऋषि महर्षि तथा समस्त प्राणी हैं उन्हीं आकाश स्थित आदित्य का ही सदा सर्वदा यशोगान किया करते हैं। वही आदित्य उद्गीथ म अनुगत है अर्थात् वही सूर्य उद्गीथ से सम्बन्ध रखने वाला देवता है। यथार्थ में यदि तुम उस देव को बिना जाने स्तुति आरम्भ कर देते, तो मेरी आज्ञा से तुम्हारा सिर अवश्य ही धड से पृथक् हो जाता। अब तुमने मेरे द्वारा उस देव का परिचय प्राप्त कर लिया है। अब कोई बात —

है। अब तुम निर्भय होकर आदित्य देव का उद्गीथ द्वारा यशोगान करो।"

यह सुनकर उद्गाता ने उद्गीथ द्वारा आदित्य देव का यशोगान किया। तदनन्तर उषस्ति ऋषि ने प्रतिहर्ता से कहा—"प्रतिहर्ता जी! आप जिस मन्त्र से प्रतिहार-स्तुति-करने वाले थे, उसे करें।"

तब वह प्रतिहर्ता भी शिष्य भाव से उषस्ति ऋषि के समीप आकर पूछने लगा—"भगवन! जब मैं प्रतिहार-स्तुति-करने को उद्यत था, तब भगवान् ने मुझसे कहा था—"प्रतिहर्ता! तुम जिस देव का प्रतिहार करने वाले हो, यदि तुम उसे बिना जाने-बिना उसका परिचय प्राप्त किये उसका प्रतिहार-स्तुति गान करोगे तो तुम्हारा सिर धड़ से पृथक् हो जायगा। कृपा करके मुझे बताइये वह देवता कौन है?"

इस पर उषस्ति ऋषि ने कहा—"प्रतिहर्ता जी! वह देवता अन्न है। अन्न ही समस्त प्राणियों का जीवन है। अन्न को ही खाकर प्राणी जीवित रहते हैं। यही अन्न प्रतिहार सम्बन्धी देवता है। यदि तुम प्रतिहार के अनुगत इस देव को बिना जाने प्रतिहार-स्तुति-करते, तो मेरे कहने पर अवश्य ही तुम्हारा सिर धड़ से पृथक् हो जाता। अब तुमने उस देवता का परिचय प्राप्त कर लिया, अब किसी भी प्रकार का भय नहीं। अब तुम निर्भय होकर अन्न देवता का प्रतिहार करो।"

यह सुनकर प्रतिहर्ता ने अन्न देवता सम्बन्धी प्रतिहार-स्तुति-की।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इन संवादों में प्रस्तोता, उद्गाता और प्रतिहर्ता द्वारा जो प्रस्ताव, उद्गीथ और प्रतिहार नाम से प्राण, आदित्य और अन्न की स्तुति की गयी है वास्तव में

प्राण, आदित्य और अन्न ये परब्रह्म परमात्मा के ही नाम हैं। अतः जो इस रहस्य को जानकर भगवान् की उपासना करता है, वह अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करता है, यह मैंने साम उद्‌गीथ सम्बन्धी उपस्ति मुनि का आख्यान आप से कहा—अब शैव उद्‌गीथ के सम्बन्ध में आप से आगे कहूँगा।"

छप्पय

प्रतिहर्ता यों कहे—आपु भगवान् बतावें।
अनुगत वह प्रतिहार देव को तिहि समुझावें॥
ऋषि उपस्ति ने कह्यो–अन्न प्रतिहार देव वे।
अन्न जीव प्रतिहरण करें जीवित सबई ये॥
प्रस्तोता प्रस्ताव के, उद्‌गाता उद्‌गीथ के।
प्रतिहर्ता प्रतिहार के, देव, प्राण, रवि, अन्न ये॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् में प्रथम अध्याय के
दशम एकादश खण्ड समाप्त।

—:—

शौव साम सम्बन्धी कथा

[१०७]

अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो
ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज ॥१॥*
(छा० उ० प्र० अ० १२ खं० १ मं०)

छप्पय

अन्न प्राप्ति के हेतु शौव सामहिँ जो गावै ।
तो निश्चय बहु अन्न साम गायन तैं पावै ॥
दाल्भ्य ग्लाव स्वाध्याय हेतु एकान्त पधारे ।
श्वेत श्वान ऋषि रूप श्वान बहु संग निहारे ॥
श्वान कहें भूखे सबहिँ, भगवन् ! गावें अन्न हित ।
प्रात करूँ आगान इत, दाल्भ्य लगायो तितहिँ चित ॥

प्राचीन काल में जिस उपाय द्वारा आजीविका अर्जन की जाय, उस धर्म के पालन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। दूसरे वर्ण का अनापदि काल में कर्म करने से वह व्यक्ति उसी वर्ण के सदृश माना जाता था। आपद्धर्म में तो एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण के कर्म से काम चला सकता है। जैसे ब्राह्मण आपत्तिकाल में क्षत्रिय वैश्य का कर्म कर सकता है, क्षत्रिय आपत्ति में

---

* तदन्तर शौव उद्गीथ को बताते हैं। एक बक नाम के दल्भ पुत्र या मित्रा के पुत्र ग्लाव स्वाध्याय के निमित्त जल के समीप गया।

ब्राह्मण वेष बनाकर भिक्षा पर निर्वाह कर सकता है, वैश्य का कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य कर्म कर सकता है। वैश्य आपत्ति काल मे शूद्र का कर्म तथा चटाई बुनने आदि का अति शूद्रों का कर्म भी कर सकता है, किन्तु इन कर्मों को तभी तक करे, जब तक आपत्ति रहे। आपत्ति निवृत्त हो जाने पर भी जो इन कर्मों को लालचवश करता रहे, इन्हें ही अपनी जीविका अर्जन का साधन बना ले, तो वह पतित हो जायगा।

जैसे लाक्षागृह से बचकर पांडवों ने आपत्ति काल मे ब्राह्मण वेष बनाकर बारह वर्षों तक भिक्षा पर ही निर्वाह किया था, किन्तु जब उनकी आपत्ति टल गयी—द्रुपद राजा की पुत्री के साथ उनका विवाह हो गया—तब उन्होंने एक दिन भी भिक्षा नहीं माँगी। क्षत्रिय धर्म के अनुरूप राज्य प्राप्ति की चेष्टा आरम्भ कर दी। इसी प्रकार ब्राह्मण आपत्ति काल में क्षत्रिय या वैश्य का कर्म कर सकता है, आपत्ति हट जाने पर भी वह शस्त्र या कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य द्वारा अपनी जीविका चलाता रहेगा, तो फिर वह उसी वर्ण के सदृश पुकारा जायगा।

ब्राह्मण की मुख्य वृत्ति तो है शिलोञ्छ वृत्ति। किन्तु देश मे घोर दुष्काल पड़ने पर कहाँ खेतों में शिला मिलेगा और कहाँ दुकान के सामने अन्न के दाने मिलेंगे। शिलोञ्छ वृत्ति से हटकर दूसरी वृत्ति है अयाचित वृत्ति। इसे अमृत वृत्ति कहा है, किन्तु दुष्काल में जब स्वयं ही लोगों के पास अन्न नहीं है, तब अयाचक ब्राह्मण को कौन अन्न देने लगा। अयाचित वृत्ति से नीची, तृतीय श्रेणी की वृत्ति नित्य घर-घर से जाकर भीख माँग लावै। इसे मृत वृत्ति बतायी है। अर्थात् अत्यन्त निकृष्ट वृत्ति। चौथी सबसे निकृष्ट वृत्ति ब्राह्मण की है खेती करना। इसे प्रमृत—

अर्थात् मृतक से भी गयी बीती—सबसे हीन वृत्ति चौथी श्रेणी का वृत्त माना है।

पूर्व काल मे ब्राह्मण लोग तीसरी ही श्रेणी तक जाते थे। साधारणतया तो उन दिनों गॉव गॉव मे यज्ञयाग पूजा पाठ होते ही रहते थे, ब्राह्मण यज्ञयाग पूजा पाठ करा कर अपनी वृत्ति चलाते थे। कहीं यज्ञयाग नहीं हुआ और भूख ने अत्यन्त ही क्लेश दिया, तो वे भिक्षा मॉगकर भी निर्वाह कर लेते थे। जैसे उषस्ति मुनि को किसी यज्ञ मे वरण नहीं मिला और कुरुदेश मे घोर अकाल पड गया, तो वे भिक्षा मॉगने गये और भिक्षा में भी उन्हें जूठे उडद खाने पडे।

इस पर सामगान करने वाले ऋषियों ने सोचा—"जब हमारे सामगायन से इस लोक तथा परलोक की सब वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं, तो सामगायन से अन्न की प्राप्ति नहीं हो सकती ?" यही सोचकर एक ऋषि अन्न प्राप्ति की इच्छा से एकान्त में सामगायन का स्वाध्याय करने गये। किन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं था, कि किस विधि से गान करने पर अन्न की प्राप्ति हो सकेगी। इसी के सम्बन्ध की यह शौव साम सम्बन्धी आख्यायिका है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सामवेद सम्बन्धी उपासना में उद्गीथ सम्बन्धी बहुत सी उपासनायें बतायीं। अब एक अन्न के निमित्त उद्गीथ की शौव साम उपासना बताते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! शौव उद्गीथ का अर्थ क्या ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! श्व कहते हैं, कुत्ते को, कुत्तो द्वारा जो उद्गीथ देखा गया हो, उसे शौव उद्गीथ कहते हैं (श्वभिर्दृष्ट उद्गीथ उद्गानम्)।"

शौनकजी ने कहा—"सामवेद का उद्गान कुत्ते कैसे कर

सकते हैं ? वेदों के गान के अधिकारी तो केवल द्विज मात्र ही हैं। फिर कुत्तों ने यह गान कैसे किया ?"

सूतजी ने कहा—"भला, कुत्ते वेद का गान कैसे करेंगे, कोई कृपालु ऋषि ही दूसरे ऋषि को कुत्ते का रूप रखकर उपदेश देने आये थे।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! ऋषि के लिये और कोई योनि नहीं रही थी क्या, जो उन्होंने ऐसी निन्दित योनि से—और वह भी साम वेद का—उपदेश किया ? कुत्ता की योनि तो अत्यन्त ही निन्दित है। कुत्ते तो अखाद्य पदार्थ खाते हैं। वान्ताशी—के किये हुए को पुनः खाने वाले होते हैं। उनका तो स्पर्श करना भी पाप है। ऋषि ने ऐसी अधम योनि से उपदेश क्या किया ?"

सूतजी ने कहा—"मुनिवर ! आपका कहना यथार्थ है। किन्तु समर्थ लोगों के लिये कोई भी योनि निन्दित या वन्दित नहीं है। स्वयं साक्षात् भगवान् ने परम निन्दित सूकर योनि में—मछली योनि में अवतार धारण किया। साक्षात् धर्मराज पाण्डवों के पीछे पीछे कुत्ता बनकर ही हिमालय में गलने गये थे। जब सब भाई गिर गये और धर्मराज ने फिरकर भी उनकी ओर न देखा, तब अन्त तक वह कुत्ता ही उनके साथ रहा। जब स्वर्ग का विमान उन्हें सशरीर स्वर्ग ले जाने को आया, तो इन्होंने कुत्ते को भी साथ ले चलने का आग्रह किया। इन्द्र ने बहुत मना किया, यह अत्यन्त अपवित्र जीव है इसे साथ ले चलने का आग्रह मत करो। किन्तु धर्मराज नहीं माने, नहीं माने तब कुत्ते के रूप को छोड़कर स्वयं साक्षात् धर्मराज प्रकट हुए और बोले—"वत्स ! मैं तुम्हारा पिता साक्षात् धर्म हूँ। तुम्हारी धर्मनिष्ठा से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ।"

बात यह है कि स्वयं साक्षात् भगवान् तथा भगवत साक्षात्

कार कृत महापुरुष ऋषि महर्षि आकाश की भाँति पवित्र तथा निर्लेप होते हैं। जैसे आकाश है, शौचालय में भी वह व्याप्त है, घडे में भी वह व्याप्त है। उस समय उसे मठाकाश, घटाकाश नाम से पुकारते हैं। जहाँ आवरण हटा–आकाश ज्यों-का-त्यों ही विशुद्ध है। इसी प्रकार भगवान् तथा भागवतों के लिये कोई योनि निन्दित वन्दित नहीं होती। उनका ज्ञान तो सभी दशाओं में निर्दोष है। इसी को बताने के निमित्त यह शौव साम सम्बन्धी कथा कही गयी है।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, तो उस शौव साम सम्बन्धी उपाख्यान को कहिये।"

सूतजी ने कहा—"अच्छी बात है, सुनिये। एक द्यामुष्यायण ऋषि थे। उनका नाम बक दाल्भ्य ग्लाव मैत्रेय था।"

शौनकजी ने कहा—"द्यामुष्यायण शब्द का अर्थ क्या है ? फिर ये दो-दो ऋषियों के पृथक्-पृथक नाम हैं ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन् ! पुत्र एक तो जन्मजात होते हैं, जो अपने वीर्य से उत्पन्न हुए हों, दूसरे पैदा तो दूसरे पिता से हुए हों, किन्तु किसी दूसरे ने उन्हे गोद ले लिया हो, वह दत्तक पुत्र कहाता है। दत्तक पुत्र का अपने जन्म वाले पिता से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। उसका गोत्र भी बदल जाता है, जो गोद लेता है उसी का गोत्र इसका गोत्र हो जाता है, किन्तु गोद लेते समय जन्म देने वाला पिता यह प्रतिज्ञा करा ले, कि इसे मेरे कुल वालों को भी पिंडोदक देने का अधिकार होगा, तो ऐसा पुत्र द्यामुष्यायण कहलाता है। वह जिस पिता से पैदा हुआ है उसके धनादिका भी अधिकारी बना रहता है और जिसकी गोद जाता है, उसके भी सब अधिकार उसे प्राप्त होते हैं, उसके दो नाम और दो गोत्र होते हैं। अतः वह द्विनामाद्वि गोत्र

कहलाता है। प्रतीत होता है ये बक महर्षि दल्भ के भी पुत्र रहे होंगे, मित्रा की गोद गये होंगे, उन्होंने इनका नाम ग्लाव रखा होगा इसीलिये इनका 'दाल्भ्यबक और मैत्रेयग्लाव' इतना लम्बा नाम हुआ होगा।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! इतनी क्लिष्ट कल्पना करने का प्रयोजन क्या है। दाल्भ्य बक और मैत्रेय ग्लाव दो ऋषि मानने मे हानि क्या है?"

सूतजी ने कहा—हानि कुछ नहीं है, महाराज! किन्तु आगे क्रिया 'उद्वव्राज' एकवचन है। दो ऋषि होते तो क्रिया द्विवचन वाली "उत्वव्रजतु" होती। इससे यहाँ सिद्ध हुआ ये दो नाम दो गोत्र वाले 'द्वयामुष्यायण' एक ही ऋषि थे। ऋषियों में स्वाध्याय प्रवचन का बड़ा महत्त्व है। स्वाध्याय प्रवचन–पठन पाठन–में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये। स्वाध्याय प्रवचन पठन-पाठन ही परम तप है। ऐसा विचार कर अन्न लाभ की कामना से—हमें साम के उद्गीथ गान से बहुत-सा अन्न प्राप्त हो, इस संकल्प से ग्राम के बाहर निर्जन एकान्त में एक जलाशय के समीप गये।

ये वहाँ बैठकर सोचने लगे—मैं किन स्वरों से उद्गीथ साम का गायन करूँ, जिससे मुझे बहुत अन्न की प्राप्ति हो, किन्तु अन्न प्राप्ति के निमित्त किन स्वरों का प्रयोग किया जाता है, इसका इनको ज्ञान नहीं था। उसी समय दूसरे कोई कृपालु मुनि सफेद कुत्ते का रूप रखकर इन्हें स्वरों की शिक्षा देने वहाँ प्रकट हुए।

ऋषि उस सफेद वर्ण के सुन्दर कुत्ते को देखकर बड़े प्रसन्न हुए, वे उसे ध्यानपूर्वक देखते ही रहे। इतने में ही बक ऋषि क्या देखते हैं कि उस सफेद कुत्ते के समीप और भी चार छोटे आ गये। उन आगत कुत्तों ने उस बड़े सफेद कुत्ते से कहा

नम्रता के साथ निवेदन किया—"भगवन्! हम सब बड़े भूखे हैं। अतः हम सबको बहुत अन्न प्राप्त हो, इस सङ्कल्प से अन्न का आगान कीजिये। जिस आगान के फलस्वरूप हमें अन्न की उपलब्धि हो।"

इस पर उस श्वेत कुत्ते ने कहा—"देखो, उद्गायन का यह समय नहीं है। अन्न के सङ्कल्प से जो उद्गीथ का आगान किया जाता है, वह प्रातःकाल में ही किया जाता है, अतः तुम सब कल प्रातःकाल यहीं आकर एकत्रित हो जाना। मैं तुम्हारे निमित्त अन्न के सङ्कल्प से साम का आगान करूँगा।"

बक महर्षि कुत्तों की वाणी समझते थे, अतः उन्हें बड़ा कुतूहल हुआ। वे स्वयं अन्न प्राप्ति के ही निमित्त सामका आगान करना चाहते थे, किन्तु उसकी विधि से अनभिज्ञ थे। अतः वे दूसरे दिन प्रातःकाल तक वहीं उन कुत्तों के आगमन की प्रतीक्षा में बैठे रहे, कि ये लोग आकर कैसे साम का आगान करते हैं।

दूसरा दिन हुआ। प्रातःकाल वे सब कुत्ते उसी जलाशय पर आकर एकत्रित हुए। यज्ञों में जो बहिष्पवमान स्तोत्र से स्तवन करने वाले उद्गाता परस्पर मिलकर जैसे भ्रमण करते हैं वैसे उन कुत्तों ने भ्रमण किया और फिर सब एक स्थान में बैठकर हिंकार करने लगे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! बहिष्पवमान स्तोत्र से उद्गाता भ्रमण करते हुए गान कैसे करते हैं?"

सूतजी ने कहा—"ब्रह्मन्! ये सब वैदिक यज्ञों की प्राचीन वैदिक विधियाँ हैं। यह विधि विशेषकर 'ज्योतिष्टोम' नाम यज्ञ की है। यज्ञों में तीन समय के तीन कृत्य त्रिःसवन होते हैं। प्रातःसवन, मध्यंदिन सवन और सायंसवन। प्रातःकाल यज्ञों में जो जो कृत्य होते हैं, वे सब तो प्रातःसवन कहाते हैं। मध्याह्न

मे जो जो कृत्य होते हैं वे मध्यदिनसवन कहलाते हैं और माय काल मे जो कृत्य होते हें, वे सायसवन कहलाते है। यज्ञो मे १६ ऋत्विज् होते हें। चारा वेदा के चार चार ज्ञाता होते है, ऋक, यजु और साम के तीन तीन और चारो वेदो के ज्ञाता ब्रह्मा के तोन सहायक इस प्रकार सत्र सोलह होते हे। यहाँ सामगायन को उपासना का प्रकरण हे। साम वेद में एक वहिष्पवमान स्तोत्र हे। नह तृच हे।"

शौनकर्जी ने कहा--"तृच क्या ?"

सूतजी ने कहा—"जिनम तीन तीन ऋचायें हो उन्हे तृच कहते हैं। इस वहिष्पवमान स्तोत्र मे सामवेद की १. उपस्मे-(साम० उ० १. १. १) २ दविद्युतत्या (साम० उ० १. ८. २) और-पवमानस्यते कवे (साम० १ १. ३ ये तीन ऋचा हैं। इसीलिये यह वहिष्पवमान स्तोत्र तृच हे।"

शोनकजी ने पूछा—"इस स्तोत्र का वहिष्पवमान नाम क्यो पडा ?"

सूतजी ने कहा—"पवमान शब्द का अर्थ हे पावन-पवित्र वहि: कहते हें वाहर को। ज्योतिष्टोम यज्ञ मे प्रात.सवन के कृत्यों मे इन तानों सूत्रों में गायत्री छान्दोन्वित सामवेद का गान हुआ करता हे। यह गान मडप के भीतर न होकर मडप के बाहर भाग मे होता हे, इसीलिये वहिष्पवमान-मण्डप के बाहर का पवित्र गान-कहलाता हे। गायन के साथ एक प्रकार का नृत्य सा भी होता चलता हे। साम वेद के ज्ञाता-गायनकर्ता-(१) उद्गाता, (२) प्रस्तोता, (३) प्रतिहर्ता और (४) ब्रह्मा ये चार तो ऋत्विज होते हैं, पाँचवाँ यजमान होता हे। ये पाँचों यज्ञमडप के बाहर क्रमबद्ध खडे होकर एक दूसरे का उत्तरीय वस्त्र पकडे हुए सस्वर गान करते हुए चात्वाल देश के प्रति शन शन मडला-

कार चलते हैं। यही वहिष्पवमान सामवेद के स्तोत्र पाठ संबंधी ज्योतिष्टोम यज्ञ मे प्रातः कृत्य है। जैसे यज्ञमंडप के बाहर ऋत्विज यजमान एक दूसरे का उत्तरीय वस्त्र पकड़कर घूमते हैं, वैसे ही वे पाँचों कुत्ते भी परस्पर में एक दूसरे की पूँछ को मुख में दबाकर परिभ्रमण करने लगे।

महर्षि दाल्म्यबक उनके परिभ्रमण को बड़े ध्यानपूर्वक देखते रहे, जब वे परिभ्रमण कर चुके तब एक स्थान पर सुखपूर्वक बैठकर हिंकार करने लगे।"

शौनकजी ने पूछा—"हिंकार कैसे करने लगे ?"

सूतजी ने कहा—'ब्रह्मन् ! सामवेद में हिं एक स्तोभ है।"

शौनकजी ने पूछा—"स्तोभ क्या ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन् ! ये सब बातें सामवेद का अध्ययन किये बिना आती नहीं। सामगायन मे हा उ हा उ आदि तेरह प्रकार के शब्द प्रयुक्त होते हैं। ये शब्द स्वर और लय की पूर्ति के निमित्त हुआ करते हैं। इन्हीं का नाम स्तोभ है। लोक में जैसे भजन की टेक को पाद पूर्ति के लिये रामा हो रामा आदि शब्दों का प्रयोग होता है उसी का नाम स्तोभ है। श्रीमद्भागवत मे कहा है—संकेत में, परिहास में, पादपूर्ति के लिए स्तोभ मे, अव-हेलना में कैसे भी भगवान् वैकुण्ठ का नाम लिया जाय, ऐसा नाम भी समस्त पापों का नाश करता है।[१]

वे श्वान लोग गायन करने लगे और हिं इस स्तोभ का उच्चारण करने लगे। कारण कि 'हिं' यह स्तोभ प्रजापति रूप है

---

१. साकेत्य पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव च।
वैकुण्ठ नाम ग्रहणं अशेषाघ हरं विदुः॥
(श्री० भा० ६ स्क०)

और अन्न के स्वामी प्रजापति हैं। अतः वे हिंकार स्तोभ के सहित प्रजापति से अन्न की याचना करने लगे।"

शौनकजी ने कहा—"वे श्वान रूप में ऋषिगण क्या गान करने लगे ? कैसे गान करने लगे ?"

सूतजी ने कहा—"ब्रह्मन् ! न तो मुझ पर साम गायन ही आता है, न इसके गायन में मेरा अधिकार ही है। भगवती श्रुति ने प्लुत स्वर में ॐ का उच्चारण के जो गान बताया है। उसका साराश यही है कि हे ओंकार स्वरूप परमात्मन् ! हम लोग भूखे हैं जिससे भोजन करें, हम लोग प्यासे हैं जिससे पानी पीवें। हे परमात्मन् ! आप देव है-प्रकाशक हैं-आप वरुण है, प्रजापति हैं, सविता हैं, हम लोगों के लिये यहाँ अन्न-अन्न लाइये। हे अन्न पते ! अन्न को यहाँ ले आइये, अन्न को हमें दीजिये। अन्न दीजिये, अवश्य दीजिये।*

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! ऐसा गान करने पर वहाँ यथेष्ट अन्न जल आ गया और सबने भर पेट खाया पिया। इसे देखकर बक दाल्भ्य ऋषि को परम सन्तोष हुआ। यही शौव साम सम्बन्धी गान है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! जो भी इस मन्त्र को पढ़ेगा, क्या उसे ही अन्न की प्राप्ति हो जायगी ?"

यह सुनकर हँसते हुए सूतजी ने कहा—"ब्रह्मन् ! महर्षि होकर भी आप ऐसा प्रश्न कर रहे हैं ? भगवन् ! मेघ राग गाने से निश्चय ही वर्षा हो जाती है। दीपक राग गाने से जितने भी

---

* ओ ३ मदा ३ मों ३ पिवा ३ म। ओं ३ देवो वरुण प्रजापतिः सविता २ न्नमिहा २ हरत। अन्नपते ३ न्नमिहा २ हरा २ हरो ३ मिति ॥

बिना जले दीपक होते हैं, वे तुरन्त जलने लगते हैं। मेघ राग को दीपक राग को बहुत से गायक गाते रहते हैं, उनके गाने से न तो मेघ ही बरसते हैं न दीपक ही जुड़ते हैं। किन्तु जो राग के समय के अनुसार उसके ताल, स्वर लय के साथ ठीक शास्त्रीय नियम से गावेंगे उनके मेघ राग गाने से अवश्य वर्षा होगी, दीपक राग गाने से अवश्य दीपक जुड जायेंगे। राग तो वे ही हैं, किन्तु उनका यथावत् संयोजक दुर्लभ है। उपासना में संयोजन ही प्रधान है। शास्त्रीय विधि विधान का यथावत् पालन हो और अपनी श्रद्धा तथा विश्वास में कमी न हो, तो उपासना से सभी कुछ सम्भव हो सकता है। जब उपासना से मुक्ति तक प्राप्त हो सकती है, तो संसारी वस्तुओं के प्राप्त होने में क्या सन्देह है?

यह मैंने आपको शौव साम सम्बन्धी समाचार सुनाया। अब सामवेद के अवयव भूत जो स्तोभ के अक्षर बताये हैं, उन स्तोभाक्षरों से सम्बन्ध रखने वाली उपासना का वर्णन मैं आपसे आगे करूँगा।"

छप्पय

प्रात होत ही श्वान सकल मिलि तिहिँ थल आये।
स्तवन बहिष्पवमान सरिस मिलि भ्रमण कराये॥
पुनि थिर ह्वै हिंकार करे सब गावन लागे।
ओंकार हे वरुण प्रजापति रवि हम मागें॥
खान पान हित अन्नपति! यहां अन्न लै आइये।
लावैं अन्न यथेष्ट इत, भरिकें पेट खिलाइये॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के प्रथम अध्याय में
एकादश खण्ड समाप्त।

सामवेद के स्तोभों की उपासना

[१०८]

अयं वाव लोको हाउकारो वायुर्हाइकार-
श्चन्द्रमा अथकारः । आत्मेहकारोऽग्निरीकारः ॥*

(छा० उ० प्र० अ० १३ ख० १ म०)

छप्पय

पाद पूर्ति के हेतु शब्द जे स्तोभ कहावैं।
तिनिकी कैसे करें उपासन सो बतलावैं ॥
हाउकार है लोक वायु ही हाइ कार है।
अथकारहिं है चन्द्र आतमा इहयकार है ॥
ऊकार हु आदित्य हैं, अग्नि कही ईकार है।
आवाहन एकार है, विश्वदेव औ होयिकार है ॥

गायन मे स्वर, लय, ताल, गति तथा राग आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है। जैसे एक पद है। उसे किस राग में गाया जायगा। वह राग कै मात्रा वाला है। कौन-सा स्वर कहाँ प्रयुक्त होगा। किस ताल और लय मे वह गाया जायगा। पद का एक स्थायी या टेक होती है, उसे बार-बार गाया जाता है।

---

* सामवेद मे जो पाद पूर्ति के लिये शब्द लगाये जाते हैं, उन्हें स्तोभ कहते हैं। उनमे हाउकार यह सम्पूर्ण लोक है। हाइकार वायु है। अथकार चन्द्रमा है, आत्मा इहकार है। और अग्नि ई कार है।

एक अन्तरा होता है। अन्तरा के भी दो भेद होते हैं। संचारी आभाग संगीत का विषय बड़ा गहन है। वैसे संगीत मे नृत्य, गीत और वाद्य तीनों का ही समावेश होता है। इनमें स्वर, राग, ताल, नृत्य, भाव, कोका तथा हस्तविन्यास ये सात बातें होती हैं। नृत्य न भी हो, केवल वाद्यो के साथ या बिना वाद्य के ही पद गायन किया जाय तो उसमे स्थायी (टेक) के साथ एक स्तोभ गायक लोग लगाते हैं। उसे पादपूर्ति कहते हैं, जैसे लोक मे-रामा हो राम, भजो सियाराम, हाँ जी, हरे हरे, अरे, हॉ, तो साधो जी आदि आदि।

प्राचीन काल मे सामवेद का गायन होता था। वह भगवान् की अनेक नाम रूपों में उपासना ही होती थी, वह उपासना सकाम निष्काम दोनों ही प्रकार की होती थी। सकाम उपासना तो किसी कामना की पूर्ति के निमित्त की जाती थी। जैसी कामना हो, वैसे ही देवकी उपासना करनी चाहिये। श्री मद्भागवत् में कुछ सकाम उपासनाओं का वर्णन आता है। जैसे जिन्हें ब्रह्मतेज की कामना हो वे वृहस्पति की उपासना करें। इन्द्रियाँ शक्तिशाली हों इस कामना से इन्द्र की, सन्तान कामना से प्रजापति को श्री कामी को मायादेवी की, तेज कामी को अग्नि की, धनार्थी को वसुओं की, वीरता कामी को रुद्रों की, अन्नेच्छुक को अदिति की, स्वर्ग कामी को देवो की, राज्य कामी को विश्वेदेवों की, प्रजा अनुकूल रहे इस कामना से साध्यों की, आयुष्कामी को अश्विनी कुमारों की, पुष्टि कामी को भू देवी की, प्रतिष्ठा कामी को पृथ्वी और द्यौ की, सौन्दर्य कामी की गन्धर्वों की, पत्नी कामी को उर्वशी अप्सरा की, आधिपत्य कामी को ब्रह्मा जी की, यशेच्छुक को यज्ञ पुरुष की, कोश कामी को वरुण की, विद्या कामी को शंकरजी की, पति पत्नी प्रेम के इच्छुकों को पार्वती

जी की, धर्मार्थी को विष्णु की, वंश परम्परा अनुण्ण बनाये रखने को पितरों की, बाधा निवारणार्थ यज्ञों की, ओज तेज बल की कामना वाले को मरुद्गणों की, राज्यकामी को मन्वन्तराधिपों की, अभिचारार्थ निऋति की, भोगार्थ चन्द्रमा की, निष्कामतार्थ नारायण की और सकाम निष्काम सभी कामनाओं की पूर्ति के लिये तीव्र भक्ति योग से भगवान् पुरुषोत्तम की आराधना करनी चाहिये।

वास्तव में आराधना–उपासना का मुख्य प्रयोजन तो भगवत् प्राप्ति ही होना चाहिये, किन्तु जब तक अन्तःकरण में नाना कामनायें भरी हुई हैं, तब तक निष्काम उपासना हो ही नहीं सकती। अतः कामना पूर्ति के निमित्त भी सकाम भाव से परमपुरुष परमात्मा श्रीमन्नारायण की ही उपासना करनी चाहिये।

छांदोग्य उपनिषद् में सामवेद सम्बन्धी उद्गीथ की अनेक प्रकार की उपासनाओं का पीछे वर्णन आ चुका है। यहाँ तक कि उद्–गी–थ इस शब्द की भी उपासना बतायी है। उसी प्रकार सामवेद के मन्त्रों में जो पाद पूर्ति के लिये स्तोभ बताये गये हैं, वे स्तोभ निम्नलिखित १३ हैं—(१) हाउ, (२) हाइ, (३) अथ, (४) इह, (५) ई, (६) ऊ, (७) ए, (८) औहोयि, (९) हिं, (१०) स्वर, (११) या, (१२) वाक् और (१३) हुं हैं। इन तेरह को सामवेदज्ञ पाद पूर्ति अर्थ मन्त्रों के साथ प्रयोग करते हैं। इन स्तोभों की भी भिन्न-भिन्न कामनाओं से पृथक् उपासना बतायी गयी है। इसी उपासना को स्तोभ अक्षर सम्बन्धिनी उपासना कहते हैं। अब आगे इसी उपासना का वर्णन है।

सूतजी कहते हैं–"मुनियो! स्तोभ अक्षर सम्बन्धिनी सामवेद की उपासना बताते हैं। सामवेद के १३ स्तोभ हैं। उन अक्षरों

की तद्‌तद् कामना के अनुसार उपासना करनी चाहिये। जैसे—

पहिला स्तोभ है हाइउ। सामवेद गान करने वाले हा इ उ, हा इ उ बहुत गाते हैं। यह हा उ शब्द मनुष्यलोक का वाचक है। अर्थात् जिसे मनुष्यलोक के सुखों की कामना हो उसे हा इ उ इस स्तोभ की उपासना करनी चाहिये।

दूसरा स्तोभ है—वाइ—यह वाइ साक्षात् वायुलोक का द्योतक है। जिस वायुलोक में जाकर वहाँ के सुखोपभोगों की कामना हो उसे इस वा इ स्तोभ की उपासना करनी चाहिये।

तीसरा स्तोभ है—अथ—यह साक्षात् चन्द्रलोक का वाचक है, जिसे चन्द्रलोक में जाने की कामना हो उसे इस स्तोभ को चन्द्र स्वरूप मानकर इसी की उपासना करनी चाहिये।

चौथा स्तोभ है—इह—यह आत्मा का वाचक है। जिसे आत्मसुख की अभिलाषा हो, उसे इस स्तोभ द्वारा उपासना करनी चाहिये।

पाँचवाँ स्तोभ है—ई—यह साक्षात् अग्नि का स्वरूप है। जिसे तेजस्वी बनकर अग्निलोक में जाने की इच्छा हो, उसे इसी को अग्नि मानकर उसकी उपासना करनी चाहिये।

छठा स्तोभ है—ऊ—यह साक्षात् सूर्य स्वरूप है। जिसे तेजस्वी सूर्यलोक में जाने की कामना हो, उसे इसी—ऊ—की उपासना करनी चाहिये।

सातवाँ स्तोभ है—ए—यह आवाहन का बोधक है। जिसे जिस देवता का आवाहन करना हो, इस स्तोभ द्वारा उस देवता का आवाहन करे।

आठवाँ स्तोभ है—औहोयि—यह विश्वेदेवों का स्वरूप है, जिन्हें विश्वेदेवताओं से राज्य की कामना हो, उन्हें इसके द्वारा उनकी उपासना करनी चाहिये।

नौवाँ स्तोभ है—हिं–यह साक्षात् प्रजापति का स्वरूप है। प्रजापति अन्न के स्वामी हैं। जिसे बहुत अन्न की कामना हो, उसे इस स्तोभ द्वारा प्रजापति की उपासना करनी चाहिये।

दशवाँ स्तोभ है—स्वर–यह प्राण स्वरूप है। स्वरोपासना पीछे बता आये हैं। जिन्हे प्राणों को प्रबल बनाने की कामना हो, उन्हें इस स्तोभ द्वारा प्राणों की उपासना करनी चाहिये।

ग्यारहवाँ स्तोभ है—या–यह अन्न स्वरूप है। अन्न की उपासना भी बता चुके हैं, जिसे बहुत अन्न की इच्छा हो, उसे अन्न ब्रह्मरूप से इसकी उपासना करनी चाहिये।

बारहवाँ स्तोभ है—वाक्–यह साक्षात् विराट पुरुष का स्वरूप है, जिसे वाणी द्वारा रहस्य प्रकट करने की इच्छा हो, उसे इस स्तोभ को विराट् मानकर इसकी उपासना करनी चाहिये।

तेरहवाँ स्तोभ है—हु–यह सबमें व्याप्त रहने वाला अव्यक्त निर्विशेष ब्रह्म है। यह वर्णनातीत है। इसका निरूपण करना सम्भव नहीं। यह सर्वश्रेष्ठ स्तोभ है।

इस प्रकार यह सामवेद के अवयवभूत स्तोभ अक्षरों की उपासना कही। जो इस रहस्य को जान लेता है, उसकी सब इच्छायें पूर्ण होती हैं। वाणी उपासक के निमित्त दुग्ध स्वय ही दुहती है, अर्थात् उसकी वाणी अपना रहस्य उसके सम्मुख स्वय ही प्रकट कर देती है। वह अन्नवान् हो जाता है, अर्थात् उसके सम्मुख भोग सामग्रियों की कमी नहीं रहती और उसमें अन्न को पचाने की–भोगों को भोगने की सामर्थ्य भी यथेष्ट आ जाती है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! इन स्तोभों की उपासना कैसे करनी चाहिये?"

हँसकर सूतजी ने कहा—"भगवन्! यह बात तो किसी

सामवेद ये रहस्य को जानने वाले सिद्धहस्त परमोपासक से ही पूछनी चाहिये। मैंने तो भगवती श्रुति ने जो अक्षर कहे–उनका यथामति यथासामर्थ्य अर्थ बता दिया। इसमें कुछ त्रुटि रह गई हो उसे सर्वान्तर्यामी परमात्मा परिपूर्ण कर लें। यह मैंने साम सम्बन्धी प्रथम अध्याय की उद्गीथ सम्बन्धिनी विविध उपासनायें बतायी। अब इस उपनिषद् के आगे के द्वितीयाध्याय में जैसे साधु दृष्टि से समस्त सामवेद की उपासना बतायी है, उसका वर्णन मैं आपसे करूँगा।''

छप्पय

प्रजापती 'हिंकार' प्राण ही 'स्वर' बतलायो।
'या' है अन्न स्वरूप 'वाक्' वीराट कहायो॥
'हुङ्कार' हु अव्यक्त स्तोभ ये तेरह सब हैं।
सब रहस्य कूँ जानि उपासन फलवति तब हैं॥
करै उपासन स्तोभ की, रहस वाक् प्रकटित करै।
भोग भोगिवे शक्ति हो, सब भोगनि तैं घर भरै॥

इति माण्डूक्य उपनिषद् के प्रथम अध्याय में
त्रयोदश खण्ड समाप्त।
प्रथम अध्याय समाप्त

समस्त साम की साधु भाव से उपासना

[१०६]

ॐ समस्तस्य खलु साम्न उपासनँ साधु यत् खलु साधु तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति ॥१॥

(छा० उ० द्वि० अ० १ ख० १ म०)

छप्पय

साधु दृष्टि तैं सकल साम की करै उपासन।
साम साधु कूँ कहैं असाम अ-साधु कहावन॥
साम भाव तैं जाइँ साधु ते जन कहलावैं।
जे असाम तैं जाइँ असाधु हु तिनहिँ बतावैं॥
साम, साधु, पर्याय शुभ, अशुभ, असाधु, असाम सम।
साम भाव राखै सदा, तजै असामहिँ घोरतम॥

काशी में जाओ तो वहाँ के लोग शास्त्रीय वचनो का उद्धरण देकर काशी को ही समस्त तीर्थों से श्रेष्ठ बतावेंगे, अन्य सभी तीर्थों को उसकी समता में तुच्छ सिद्ध करेंगे। प्रयागराज में आओ तो समस्त तीर्थों का एक छत्र सम्राट् तीर्थराज प्रयाग को ही बतायेंगे। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका तथा

ॐ समस्त सामवेद की उपासना साधु भाव से करनी चाहिये। 'साम' शब्द का साधु अर्थ है जो साधु होता है उसे साम और जो असाधु होता है उसे असाम कहा करते हैं।

द्वारका ये पवित्र सात पुरियाँ हैं, ये तो तीर्थराज की सात पट रानियाँ हैं, अयोध्या में जाओ तो उसे सबसे श्रेष्ठ बतायेंगे। कहने का अभिप्राय इतना ही है, जिस तीर्थ में जाओ वहीं के लोग उस तीर्थ को सर्वश्रेष्ठ तथा उसके अतिरिक्त अन्य तीर्थों को हेय बतावेंगे। यहाँ अन्य तीर्थों को हेय बताने से उनकी निन्दा में तात्पर्य नहीं है। अपना तीर्थ श्रेष्ठ है, उस तीर्थ की श्रेष्ठता में ही तात्पर्य है। इसी प्रकार विद्याओं में वेदों की भी बात है। विद्याओं में अध्यात्म विद्या को सर्वश्रेष्ठ बताया है, किन्तु वैद्यक विद्या को अधम से भी अधम बताया है। (वैद्यविद्याधमाधमा) वैद्य को अत्यन्त निकृष्ट बताया है। यात्रा में उसका दर्शन अशुभ बताया है, श्राद्ध में वैद्य को बुलाना निषेध है, वैद्य को अपाक्तेय बताया है, उसे ब्राह्मणों की पंक्ति में बिठाना निषेध है। वैद्य के घर भोजन करना निषेध है। वैद्य के अन्न को फोड़े का पीव-राध- बताया है। (चैद्यस्य अन्नं पूयान्नम्) किन्तु आयुर्वेद शास्त्र में आयुर्वेद को ही सब वेदों में श्रेष्ठ बताया गया है। चरक के सूत्र स्थान में लिखा है यह आयुर्वेद आयु का वेद होने से सब वेदों से अधिक पवित्र है, ऐसा वेदज्ञ पुरुषों का मत है क्योंकि मनुष्यों के दोनों लोकों का हित इस वेद में बताया गया है।*

इसी प्रकार वैद्यों की भी इसमें बड़ी प्रशंसा की गयी है। वैद्यों को जीवन दाता, प्राण देने वाला, सबसे श्रेष्ठ परोपकारी बताया है। वहाँ वैद्यों को उपदेश करते हुए कहा है—"वैद्य बनने वाले बुद्धिमान पुरुष को अपने गुणों की सम्पत्ति के लिये अत्यधिक

---

* तस्यायुष पुण्यतमो वेदो वेदविदा मतः।
वक्ष्यते यन्मनुष्याणा लोकयोरुभयोर्हितम्।

प्रयत्न करना चाहिये। जिससे वह मनुष्यों में वास्तविक प्राणद–जीवन प्रदान करने वाला–बन सके।"

यहाँ आयुर्वेद की तथा आयुर्वेद के ज्ञाता की महत्ता बताने में तात्पर्य है, दूसरे वेदों की निन्दा में तात्पर्य नहीं है। जिसका जो विषय हो, उसे अपने विषय को सर्वश्रेष्ठ मानकर ही उसकी उपासना करनी चाहिये।

इसी प्रकार वेदों का भी बात है। वेदों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मार्कण्डेय पुराण में मार्कण्डेय मुनि ने बताया है, कि ब्रह्माजी के चार मुखों से चारों वेदों की उत्पत्ति हुई। पहिले पूर्व मुख से ऋग्वेद हुआ यह रजोगुण रूप है, दूसरे दक्षिण मुख से यजुर्वेद हुआ यह सत्वगुण रूप है। पश्चिम तीसरे मुख से सामवेद हुआ यह तमोगुण रूप है। चौथे मुख से अथर्ववेद हुआ घोरा घोर स्वरूप है। इस प्रकार सामवेद को तमोगुण रूप कहकर उसे हेय बताया है,[१] इसलिये प्रातःकाल ऋग्वेद का पाठ करे, मध्यान्ह में यजुर्वेद का पाठ करे और सायकाल मे सामवेद का करे इसे अभिचारक बताया है। ऋग्वेद को ब्रह्मा कहा है, यजुर्वेद को विष्णु कहा है और सामवेद को रुद्र कहा है और इसकी ध्वनि को भी अशुचि बताया है। क्यों बताया है, इसके लिये कहते हैं–ऋग्वेद तो देवता और देवत्यों के लिये है, यजुर्वेद मनुष्यों के

।भषग्बुभूषुमतिमानत स्वगुणसम्पर्द ।
पर प्रयत्नमातिष्ठेत् प्राणद स्याद्यथा नृणाम।
(चर० सं० सू० स्था० अ० अ ६)

[१] रऋचो रजोगुणा सत्व यजुषश्च गुणो मुने।
तमोगुणानि सामानि तम सत्वमथर्वसु॥
ऋचस्तपन्ति पूर्वाह्णे मध्यान्हे च यजूषि वै।
सामानि चापराह्णे तु तपन्ति मुनि सत्तम॥

लिये और सामवेद पितरों के लिये है, इसीलिये इसकी ध्वनि अशुचि मानी गयी है।[१] अतः सामवेद की ध्वनि सुनने के अनन्तर ऋग्वेद तथा यजुर्वेद को कभी भी न पढ़ना चाहिये।[२]

इस प्रकार पहिले लोगों में साम ध्वनि के सम्बन्ध में कम आदर रहा होगा। हमारी यह छांदोग्य उपनिषद् सामवेद की ही उपनिषद् है। अतः इसने सामवेद की साङ्गोपाङ्ग उपासना का वर्णन किया है। सर्वप्रथम प्रणव की उपासना बतायी फिर स्तोभों की, उद्गीथ का महत्व बताया अब वह यह बताना चाहती है, कि सम्पूर्ण सामवेद ही शुभ है, साधु है। उसकी ध्वनि साधुरूप है, परमशुभ है, जो इस भावना से समग्र सामवेद की उपासना करता है उसके सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह जो छान्दोग्य उपनिषद् है, यह सामवेदीय उपनिषद् है, इसमें सामोपासना की ही उत्कृष्टता बतायी है। प्रथम अध्याय में साम के जो अंग उपाङ्ग अवयव हैं—जैसे ओंकार जो सामवेद का अवयव है उसकी व्याख्या, उसकी आधिदैविक अध्यात्म उपासना, ओंकार के आश्रय से अमृतत्व की प्राप्ति, सूर्य तथा प्राण रूप में ओंकार की उपासना, उद्गीथ जो साम का एक भाग है उसकी विविध रूपों से उपासना, फिर

---

[१] शातिक ऋक्षु पूर्व्वाण्हे यजु॰ स्वनृषपौष्टिकम्।
अपराण्हे स्थित नित्यं साम स्वेवाभिचारिकम्॥
सृष्टौ च ऋङ्मुखो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुयजुर्म्मय॰।
रुद्र साममयोऽन्ते च तस्मात्तस्या शुचिर्ध्वनिः॥

[२] ऋग्वेदो देव दैवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः।
सामवेदः स्मृतः पित्र्यस्तस्मात्तस्या शुचिर्ध्वनिः।
सामध्वनावृग् यजुषी नाधीयीत कदाचन (म॰ ४। १२३)

सामवेद के जो तेरह स्तोभ हैं, इनकी उपासना इस प्रकार ये सामवेद के सब अवयव हैं, ये स्तोत्र उद्‌गीथ आदि साम के एक देशीय अंग हैं। अब आगे समस्त सामवेद से सम्बन्ध रखने वाली उपासनाओं का वर्णन किया जायगा। जैसे प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम ओंकार का महत्त्व बताया गया है, महत्त्व बताकर ही तो ओंकार की उपासनायें बतायी जा सकती हैं। जिसकी उपासना करनी हो पहिले उसके महत्त्व का निरूपण करना चाहिये। क्योंकि महत्त्व ज्ञान हो जाने पर उपासना में रुचि, अनुराग तथा आसक्ति होती है। अब तक साम के अगों के अवयवों की उपासना कही। अब समस्त साम जो अङ्गी है–अवयवी है–उसका महत्त्व जानकर तब उसकी उपासना करनी चाहिये।

पहिले 'साम' शब्द को ही लीजिये। साम शब्द ही कितना पवित्र है। साम शब्द का पर्याय है 'साधु' लोक मे कहावत है अमुक विशिष्ट व्यक्ति के समीप वह विद्यार्थी साम भाव से गया, तो वे बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने उसे पुरष्कृत किया। यहाँ सामभाव से का अर्थ हुआ साधु भाव से गया। साधु भाव का परिणाम क्या होता है, महत् पुरुषों की कृपा तथा पुरष्कृत होना।

इसके विपरीत कहते हैं—अमुक विद्यार्थी उन विशिष्ट व्यक्ति के समीप असामभाव से गया। तो वे उस पर बड़े अप्रसन्न हुए, उन्होंने उसकी बड़ी भर्त्सना की। यहाँ असामभाव से जाने का अर्थ हुआ असाधुभाव से जाना। उसका परिणाम क्या ? महत् पुरुषों का प्रकोप, उनका शाप आदि।"

दूसरे साम शब्द सुष्टु, सुन्दर, शोभन तथा शुभ अर्थों में भी प्रयुक्त होता है। जैसे कोई पूछे—"आप किसी काम से अमुक नगर में गये थे, वहाँ क्या हुआ ?" तो यदि अच्छा हुआ होगा

तो आप कहेंगे—"वहाँ हमारा 'साम' हुआ। अर्थात् साधु हुआ, शुभ हुआ, मगल हुआ, शोभन हुआ, सुन्दर हुआ।" यदि वहाँ कुछ अनिष्ट हो गया हो, तो कहेंगे—"अजी, वहाँ तो असाम हुआ, अर्थात् असाधु हुआ, अशुभ हुआ, अमङ्गल हुआ, अशोभन हुआ।"

जब लोक मे ही 'साम' शब्द प्रचलित अर्थ मे मङ्गलवाचक, साधुवाचक, शुभवाचक तथा कल्याणवाचक है, तो फिर वेद का साम तो परममगल, परमसाधु तथा परमकल्याणकारक है, इस लिये समग्र सामवेद की श्रद्धा के साथ उपासना करनी चाहिये।

इस भाव को जानकर सामवेद को शुभ मानकर जो पुरुष साम की उपासना करते हैं, वे भी सामभाव—साधुभाव को प्राप्त हो जाते हैं। उनके समीप साधु धर्म शीघ्र ही आ जाते हैं—धर्म के जो साधु लक्षण हैं—जैसे धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य तथा अक्रोधादि सद्गुण स्वभावतः आ जाते हैं। उनके पाप भग जाते हैं उसे अभ्युदय तथा निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है। धर्म के ये समस्त गुण समग्र सामोपासक के समीप स्वय ही आकर विनम्र हो जाते हैं। अर्थात् उपासक के भोग्य बन जाते हैं। जब स्वयं साम शब्द ही इतना शुभ है, तो उसके गायन की ध्वनि कितनी शुचि पवित्र होगी। अतः सामवेद के किसी भी भाग की किसी भी स्तोत्र की स्तुति सुनकर प्रसन्न होना चाहिये उसे परमपवित्र मानकर आह्लादित होना चाहिये।

शौनकजी ने कहा—"सामवेद तो स्वयं ही परम पवित्र है, वह भगवान् विभूति ही है, इसे यहाँ कहने की आवश्यकता क्यों पड़ी ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! लोक में वेद मे सर्वत्र संघर्ष

देखने में आता है, प्राचीनकाल में सामवेद ध्वनि को अन्य वेद पाठी उतना महत्त्व नहीं देते थे, इसीलिये तो यज्ञों में सायं सवनों में ही सामवेद का पाठ रखा जाता था और सामवेद गायन के अनन्तर फिर ऋग् तथा यजुर्वेद का उच्चारण नहीं करते थे।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! ऐसी बात तो नहीं है, ज्योतिष्टोम यज्ञों में सामवेद के बहिष्पवमान स्तोत्र की जो तृच—तीन-तीन ऋचायें हैं उनका गायन तो प्रातःकाल प्रातःसवन में ही होता है।"

सूतजी ने कहा—"भगवन् ! वह सामान्य नहीं विशेष विधि है। फिर उसमे भी सामवेद के गाने वाले १. उद्‌गाता, २. प्रस्तोता, ३. प्रतिहर्ता तथा ४. सामगायक ब्रह्मा ये चारों सामवेदीय यजमान को लेकर मंडप के बाहर हो जाते हैं। उसका गायन मंडप मे न करके मंडप के बाहर एक दूसरे का वस्त्र पकड़े हुए गाते-गाते चात्वाल देश की ओर जाते हैं। यह प्रातः सवन मे मंडप के बाहर का कृत्य है। मण्डप में अन्य वेदों का पाठ होता ही रहता है।"

हमारी छांदोग्य की भगवती श्रुति कहती है साम सदा शुद्ध और साधु है, इसी भाव से समग्र साम की उपासना करनी चाहिये। आगे चलकर तीनों सवनों मे साम का कौन-कौन-सा भाग गाना चाहिये। इसको भी बतावेंगे। अब लोक विषयक पञ्चोपासना का वर्णन करेंगे। ऊपर के और नीचे के लोको की किस प्रकार सामोपासना करनी चाहिये। इसका संक्षेप मे वर्णन किया जायगा। इन उपासनाओं का रहस्य तद्‌विषयक ज्ञाताओं से ही भली-भाँति जाना जा सकता है। श्रुतियों को तथा उनके अर्थों को श्रवण का भी बड़ा माहात्म्य है, इसी भाव से भगवती श्रुति के अर्थों का निरूपण किया है। अल्प बुद्धि होने के कारण जो कुछ

त्रुटि रह जाय, उसे सर्वात्मा जगदाधार क्षमा कर देंगे और स्वयं परिपूर्ण बना लेंगे। क्योंकि वे स्वयं परिपूर्ण हैं। उनके नाम स्मरण से मन्त्र, तंत्र, देश, कालादि सम्बन्धी समस्त त्रुटियाँ निश्छिद्र बन जाती हैं।

छप्पय

साम भाव या साधुभाव तैं करें उपासन।
साधुभाव तिनि होइ आइँ ढिँग परम साधु तिन॥
जगत् प्रतिष्ठा होइ पाप सबरे नसि जावें।
लोक अभ्युदय होइ मोक्ष की पदवी पावैं॥
दम, धृति, विद्या, शौच, धी, सत्य, क्षमा, अक्रोध ये।
अस्तेय हु इन्द्रिय दमन, सहज नम्र ह्वै जायँ ते॥

लोक सम्बन्धी पञ्चविध सामोपासना

[११०]

लोकेषु पञ्चविधं सामोपासीत पृथिवी हिंकारोऽग्निः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु ॥१॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० २ ख० १ मं०)

छप्पय

ऊपर नीचे लोक पचविध करै उपासन।
पृथिवी है हिंकार अग्नि प्रस्ताव कह्यो इन॥
अन्तरिक्ष उद्गीथ कह्यो प्रतिहार सूर्य वर।
स्वर्गलोक है निधन उपासक मृत निवसें नर॥
धर्म रूप अज तैं भये, पृथिवी आदिकलोक सब।
साम रूप ये लोक हैं, मिलैं उपासन भोग सब॥

वैदिक उपासनायें हमें ऊपर उठाने वाली होती हैं। जब तक हम ऊपर के लोकों का–स्वर्गादि तथा नरकादि लोकों का–अस्तित्व न मानेंगे, तब तक धर्मार्थ सहे जाने वाले कष्ट व्यर्थ हैं। लोक में जो कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत करते हैं, शरीर को सुखाने को नाना

---

* लोकों मे पाँच प्रकार की सामोपासना करनी चाहिये। पृथ्वी हिंकार है, अग्नि प्रस्ताव है, अन्तरिक्ष उद्गीथ है, आदित्य प्रतिहार है और स्वर्ग निधन है, ये ऊपर के लोकों की उपासनायें हैं।

भाँति के तप करते हैं, वे सब परलोक प्राप्ति के लिये ही तो करते हैं। यदि परलोको का अस्तित्व ही न मानें-मरने पर जीव की ऊर्ध्वगति या अधोगति होती है, उसे स्वर्ग या नरकादि लोकों की प्राप्ति होती है, इस सिद्धान्त को मानने पर ही शुभ कर्मों का अनुष्ठान नाना भाँति की उपासनायें सभव हैं। यदि जीव का सम्बन्ध केवल शरीर तक ही मानें कि जब तक शरीर है, तब तक जीव है, शरीर के नष्ट होते ही जीव भी नष्ट हो जाता है, तब तो शुभ कर्मों का उपासनाओ की-कोई आवश्यकता ही नहीं रहती, तब तो केवल शरीर को पुष्ट बनाये रखना ही परम पुरुषार्थ है। तब धर्म सदाचार की भी आवश्यकता नहीं। तब तो जैसे बने तैसे शरीर को पुष्ट करो। ऋण लेकर भी शरीर को पुष्ट बनाने को घृत पीओ। क्योंकि शरीर के भस्म हो जाने पर जीव भी नष्ट हो जायगा, फिर कौन ऋण चुकाने आता है, कौन सुकृत दुष्कृतों का भोग भोगने आता है। शरीर ही सब कुछ है परलोक फरलोक कुछ नहीं* ऐसे नास्तिक लोग वेद नहीं मानते परलोक नहीं मानते। हमारे यहाँ ईश्वर को मानो चाहे न मानो इसमे आस्तिकता नास्तिकता नही मानी जाती। जो वेद को नहीं मानता, परलोक को नहीं मानता वही नास्तिक है (नास्तिको वेद निन्दकः) और जो वेद को तथा परलोक को मानता है वही आस्तिक है।

ऊपर के सात और नीचे के सात इस प्रकार चौदह लोक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे बताये गये हैं। इन चौदह को त्रिलोक में भी विभक्तकर लेते हैं। जैसे नीचे के सात लोकों को भू जिवर-पृथ्वी

---

* यावज्जीवेत् सुख जीवेद् ऋण कृत्वा घृत पिबेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमन कुतः॥
(चार्वाक सिद्धान्त)

के छेद मानकर नीचे के सात और पृथ्वी को–इस प्रकार आठ लोकों को तो पृथ्वीलोक, स्वर्ग और पृथ्वी के बीच के अन्तरिक्ष-पोल–या अवकाश को अन्तरिक्षलोक और स्व, मह, जन, तप और सत्य इन पाँचों की स्वर्ग मे गणना करके त्रिलोकी मे ही सबका समावेश कर लेते हैं। यहाँ हमारे सामवेद वाले लोकों के पाँच विभाग करते हैं। उनके वे दो विभाग करते हैं, एक तो नीचे से ऊपर को जाने वाले (ऊर्ध्व लोक) ऊपर मुख वाले। दूसरे ऊपर से नीचे आने वाले (आवृत्ता) नीचे मुख वाले लोक हैं। नीचे से ऊपर जाने वाले (१) पृथ्वीलोक, (२) अग्निलोक, (३) अन्तरिक्ष लोक, (४) आदित्य लोक और (५) पाँचवा द्युलोक या स्वर्गलोक ये ऊपर मुख वाले लोक हैं। ऊर्ध्व गति वाले नीचे से इन्हीं ऊपर के लोकों को जाते हैं। अब ऊपर से नीचे आने वाले लोक आवृत्त यानीचे मुख वाले कहाते हैं। इन लोकों को उलट दो जैसे (१) द्यु या स्वर्गलोक, (२) आदित्यलोक, (३) अन्तरिक्षलोक, (४) अग्नि लोक और पृथ्वीलोक। इन लोकों की उपासना इन लोकों के भोगों की प्राप्ति के निमित्त करनी चाहिये।

सूतजी कहते हैं– 'मुनियो' सामवेद के जिस भाग को केवल उद्‌गाता गाता है, उसे 'उद्‌गीथ' कहते हैं, जिसे प्रस्तोता गाता है, उसे प्रस्ताव कहते हैं और जिसे प्रतिहर्ता गाता है उसे प्रतिहार कहते हैं। इस प्रकार (१) उद्‌गीथ, (२) प्रस्ताव और (३) प्रतिहार तीन तो ये हुए। अब तीन ऋत्विज 'हिं' इस साम के स्तोभ द्वारा जिसका गान करते हैं उसे हिंकार कहते हैं चौथा यह हिंकार हुआ। अब पाँचवाँ 'निधन' है। निधन उसे कहते हैं जिसका समस्त ऋत्विज मिलकर गान करते हैं। इस प्रकार (१) उद्‌गीथ, (२)प्रस्ताव, (३) प्रतिहार, (४) हिंकार और

(५) निधन ये पाँच प्रकार के सामवेद के ऋत्वङ्ग बताये हैं। इन पाँच ऋत्वङ्गो द्वारा पाँच लोकों की उपासना करे ?"

शौनकजी ने पूछा—"किस ऋत्वङ्ग द्वारा किस लोक की उपासना करे ?"

सूतजी ने कहा—"पहिला पृथ्वी लोक इसकी लोक भावना से–साधु भावना से भी–उपासना करनी चाहिये।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! एक में दो भावना कैसे करे ? या तो साधु भावना से ही उपासना करे या लोक भावना से ? दोनों भावनायें एक साथ कैसे होंगी ?"

सूतजी ने कहा "भगवन् ! जैसे हम कहते सुन्दर अंगूठी में सुवर्ण की भावना करे। सुन्दर घड़े में मृत्तिका रूप में भावना करे। चीनी के बने हाथी मे चीनी हाथी की भावना करे। तो ये दो नहीं एक-सी ही भावनायें हैं। अंगूठी सुवर्ण की ही है सुवर्ण मय है घड़ा मृत्तिका का ही है अतः मृत्तिकामय है, चीनी का बना हाथी चीनीमय ही है दोनो एक दूसरे मे अनुगत हैं। पृथ्वी आदि लोक स्वयं साधु हैं इन लोकों मे साधु भावना अनुगत है। इसलिये पहिले शास्त्र ने आज्ञा दी साधु भाव से उपासना करो। साधुता स्वतः प्राप्त होने पर साधु कहना शास्त्रीय आदेश है। क्योंकि कार्य और अकार्य में शास्त्रीय वाक्य ही प्रमाण भूत हैं।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, तो प्रथम भूलोक है इसकी किस ऋत्वङ्ग से उपासना करनी चाहिये ?"

सूतजी ने कहा—"जिसे तीन ऋत्विज् 'हिं' इस स्तोभ द्वारा गाते हैं उस हिंकार द्वारा पृथ्वी की उपासना करनी चाहिये। अर्थात् पृथ्वी ही हिंकार है ऐसी दृष्टि करके पृथ्वी लोक की उपासना करनी चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! तीन ऋत्विज मिलकर सामवेद के 'हिं' स्तोभ द्वारा हिंकार का गान कैसे करते हैं।"

सूतजी ने कहा—"यह हिकार तृच है। अर्थात् तीन-तीन ऋचाओं वाला यह स्तोत्र है। प्रथमा भक्ति से पहिले तीन से पहिला ऋत्विज 'हिं' का गान करता है। फिर मध्यमा भक्ति से दूसरा ऋत्विज, दूसरी तीन ऋचाओं से गान करता है, फिर तीसरा ऋत्विज शेष तीन से 'हिं' का गान करता है। ऐसे तीनों मिलकर इस हिंकार का गान करते हैं। इस प्रकार हिंकार स्तोत्र को पृथ्वी का ही रूप मानकर इसके द्वारा पृथ्वीलोक की उपासना करनी चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"द्वितीय अग्निलोक है, इसकी उपासना सामवेद के किस क्रत्वङ्ग द्वारा करनी चाहिये।"

सूतजी ने कहा—"मैं पहिले ही बता चुका हूँ कि प्रस्तोता जिस साम स्तोत्र का गान करता है उसे प्रस्ताव कहते हैं। उस प्रस्ताव द्वारा अग्निलोक की उपासना करनी चाहिये। अग्नि ही प्रस्ताव है इस दृष्टि से अग्नि की उपासना करनी चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"तृतीय अन्तरिक्ष लोक है, उसकी उपासना सामवेद के किस क्रत्वङ्ग द्वारा करनी चाहिये ?"

सूतजी ने कहा—"अन्तरिक्ष लोक की उद्‌गीथ द्वारा उपासना करनी चाहिये। अन्तरिक्ष को उद्‌गीथ का ही स्वरूप माने, उसी दृष्टि से उपासक द्वारा उसका गान करना चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"चतुर्थ आदित्य लोक है, इसकी उपासना किस क्रत्वङ्ग द्वारा करनी चाहिये।"

सूतजी ने कहा—"भगवन् प्रतिहर्ता ऋत्विज जिस स्तोत्र द्वारा साम गान करता है उसे प्रतिहार कहते हैं, उस प्रतिहार द्वारा

आदित्य को ही प्रतिहार मानकर आदित्य लोक की उपासना करनी चाहिये।"

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! पंचम जो द्युलोक-स्वर्ग है, उसकी किस अवयव द्वारा उपासना करनी चाहिये।"

सूतजी ने कहा—"ब्रह्मन् ! सब ऋत्विज मिलकर साम के जिस स्तोत्र का गान करते हैं, उस निधन द्वारा द्युलोक की उपासना करनी चाहिये। द्युलोक को निधन स्वरूप मानकर निधन दृष्टि से उसकी उपासना करनी चाहिये।"

शौनक जी ने पूछा—"पृथ्वी लोक कहाँ से लेकर कहाँ तक है ?"

सूतजी ने कहा—"ब्रह्मन ! अतल, वितल, सुतल, पातालादि जो सातों नीचे के लोक हैं, वे सब पृथ्वी के ही अन्तर्गत हैं। इसीलिये इन नीचे के सातों लोकों को सप्त भूविवर भी कहते हैं। ऊपर एक अवीचि स्थान है वहाँ से लेकर सुवर्ण का जो सुमेरु पर्वत है-जिसे इन चर्म चक्षुओं से किसी भी प्रकार नहीं देखा जा सकता। जो इलावृत्त खंड में अवस्थित है वह इलावृत खंड की कमल की कर्णिका के सदृश मध्य में स्थित है। उसके चारों ओर अष्टदल कमल के सदृश आठ खंड में जिनमें से मनुष्य केवल भरत खंड-या अजनाभ खंड-को ही देख सकता है। समुद्र का जल जहाँ तक खारा हो वह सभी भाग भारतवर्ष है। शेष आठ भू स्वर्ग हैं। उनमें स्वर्ग से पुण्य शेष वाले पुरुष रहते हैं, उनकी आयु सहस्रों वर्षों की होती है। भारतवर्ष के मनुष्य इस मर्त्य शरीर से उनमें जा नहीं सकते। ये सब सप्तद्वीप और आठ खंड सुमेरु से सटे हुए हैं। इसीलिये अवीचि स्थान से लेकर सुमेरु पर्वत की पीठ तक का सम्पूर्ण भाग भूलोक कहलाता है।"

शौनकजी ने पूछा—"फिर अन्तरिक्ष लोक कहाँ तक है ?"

सूतजी ने कहा—"भूलोक भुवर्लोक और स्वर्ग लोक इन तीनों लोको का आधार सुमेरु पर्वत ही है। सुमेरु के पृष्ठ भाग नीचे का सब स्थान भूलोक है। सुमेरु के जो आठ शिखर हैं, उन पर इन्द्रादि आठ लोकपालो की पुरियाँ हैं, वे सब की सब स्वर्गलोक के अन्तर्गत हैं, स्वर्गलोकों से नीचे और पृथ्वी लोक से ऊपर इन दोनों के मध्य में जो सुमेरु पर्वत की पीठ से लेकर ध्रुवलोक पर्यन्त जिस मे ग्रह नक्षत्र तथा तारागण भ्रमण करते रहते हैं उसी का नाम अन्तरिक्ष लोक है।"

शौनकजी ने पूछा—"द्युलोक कहाँ तक है ?"

सूतजी ने कहा—"सुमेरु पर्वत के आस-पास के आठ शिखरों पर तो आठ लोकपालों की पुरियाँ हैं, बीच का जो सबसे ऊँचा शिखर है उस पर ब्रह्माजी की एक विशिष्ट सभा है, ब्रह्मलोक से कभी-कभी ब्रह्माजी आकर इस सभा में अपनी बैठक किया करते हैं। अष्ट लोकपालों की पुरियाँ, ब्रह्माजी की सभा ये सब स्वर्गलोक के अन्तर्गत हैं। स्वर्गलोक पाँच प्रकार का है।"

शौनकजी ने पूछा—पाँच प्रकार का स्वर्गलोक कौन-कौन-सा है ?"

सूतजी ने कहा—"(१) स्वर्गलोक, (२) महर्लोक, (३) जन लोक, (४) तपलोक और (५) सत्यलोक ये पाँचो ही स्वर्गलोक के अन्तर्गत माने जाते है। इनकी तीन संज्ञायें हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"वे तीन संज्ञायें कौन-कौन-सी हैं ?"

सूतजी ने कहा—"एक तो महेन्द्र संज्ञा है, जिसके अन्तर्गत महेन्द्र आदि अष्ट लोकपालों की पुरियाँ आ जाती हैं, जिसे स्वर्ग लोक, देवलोक, नाक, त्रिदिव, द्यौः त्रिविष्टप आदि कहते हैं ये सब माहेन्द्र संज्ञा के अन्तर्गत हैं। दूसरी संज्ञा है प्राजापत्य। उसका नाम महर्लोक है। उसमें प्रजावान्, गृहस्थी—महर्षिगण

निवास करते हैं, जैसे वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, अत्रि आदि-आदि। इसमें अवकाश प्राप्त मनु, प्रजापति, इन्द्रादि भी आकर निवास करते हैं। ये प्रजावानों के-संतति वालों के-सपत्नीक महर्षियों के-लोक हैं। इसीलिये महर्लोक की प्रजापति लोक भी संज्ञा है। अब महर्लोक से आगे जो जनलोक, तपलोक, और सत्यलोक ये तीन लोक हैं, ये अप्रजवानों के संतति से सम्बन्ध न रखने वाले-अग्निहस्थियों के लोक हैं। केवल ब्रह्माजी को छोड़कर इन लोकों के रहने वाले पत्नी नहीं रख सकते। इसलिये इन तीनों लोकों की ब्राह्म संज्ञा है। जनलोक में ऊर्ध्वरेता वे ब्रह्मचारी ही निवास करते हैं, जिन्होंने कभी दार ग्रहण किया ही नहीं। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अखंड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया हो, जैसे आप नैमिषारण्य निवासी मुनिगण। तपलोक में वे तपस्वी ही निवास करते हैं, जिन्होंने घोर तपस्या द्वारा समस्त पापों को जलाकर निष्पाप हो गये हों और ब्रह्मलोक में ब्रह्मपरायण, त्यागी, संन्यासी, वीतरागी पुरुष रहते हैं। ये तीनों प्रायः अपुनरावृत्ति लोक हैं। प्रायः कहने से अभिप्राय यह है जो लोग अत्युत्कट पुण्यों द्वारा इन लोकों को प्राप्त कर लेते हैं वे पुण्य कर्म प्राप्त लोग तो पुण्य क्षीण होने पर पुनः पृथ्वी पर जन्म ले लेते हैं। ये तीनों ही लोक ब्रह्मलोक के अन्तर्गत हैं, अतः ब्राह्म लोक कहाते हैं। इस प्रकार (१) माहेन्द्रलोक, (२) प्रजापतिलोक और (३) ब्राह्मलोक ये तीनों स्वर्ग की ही तीन संज्ञायें हैं। ये तो ऊर्ध्वमुख लोकों की उपासना बताई अब अधोमुखी लोकों की नीचे उतरते हुए लोकों की-उपासना बताते हैं। इसे ठीक उलट दीजिये। ऊर्ध्वमुख लोकों की उपासना तो नीचे से भूलोक से आरम्भ होकर ऊपर स्वर्गलोक में समाप्त हुई थी। इस अधोमुखी लोकों की ऊपर के द्युलोक-स्वर्ग-से आरम्भ होकर नीचे भूलोक

में समाप्त होगी। जैसे द्युलोक–स्वर्ग–को हिंकार मानकर हिंकार दृष्टि से उपासना करे। उससे नीचे आदित्यलोक को प्रस्ताव मानकर प्रस्ताव दृष्टि से उपासना करे। उससे नीचे अन्तरिक्ष लोक को उद्‌गीथ मानकर उद्‌गीथ द्वारा उसकी उपासना करे। अग्निलोक को प्रतिहार मानकर प्रतिहार द्वारा उसकी उपासना करे, तथा पृथ्वी लोक को निधन मानकर निधन दृष्टि से उपासना करे। जैसे पहिले पृथ्वी को हिंकार माना था अब उलटे भी स्वर्ग को हिंकार द्वारा उपासना करे। उलटे क्रम से।

इस पाँच प्रकार की–हिंकार, प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार और निधन इन पाँच रूपों से पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आदित्य और द्युलोक की ऊर्ध्वमुख उपासना करता है, अथवा अधोमुख उपासना करता है। उनको पाँचों लोक के जो भोग्य पदार्थ हैं, वे अवश्य ही उपस्थित हो जाते हैं। यह इन लोकों की पञ्चविध सकामोपासना का फल है। अब इसी प्रकार वृष्टि में पाँच प्रकार की सामोपासना बतायी है, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

उलटि अधोमुख होइ उपासन सुनहु विप्रवर!
स्वर्गलोक हिंकार कह्यो प्रस्ताव सूर्य वर॥
अन्तरिक्ष उद्‌गीथ अग्नि प्रतिहार जतायो।
भये अधोमुख उलटि निधन तिहि भूमि बतायो॥
जानि उपासन साम की, करै पंचविध पुरुष जब।
नीचे ऊपर लोक के, भोग प्राप्त है जाइँ सब॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय का
द्वितीय खण्ड समाप्त

वृष्टि सम्बन्धिनी पञ्चविध सामोपासना

[१११]

वृष्टौ पञ्चविधॅ सामोपासीत पुरोवातो हिंकारो मेघो जायते । स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योततेस्तन यति सप्रतिहारः॥*

(छा० उ० द्वि० अ० ३ ख० १ मं०)

छप्पय

वर्षा में हू करैं पञ्चविध साम उपासन।
पूर्व वायु हिंकार न वर्षा होवै ता बिन॥
जो पैदा हों मेघ वही प्रस्ताव बतायो।
झर-झर वर्षा होइ वही उद्गीथ कहायो॥
चम चम चमकत पुनि उमड़ि, घुमड़ि घुमड़ि गरजन करत।
वही कह्यो प्रतिहार है, निधन मह न पुनि जल करत॥

धृन्दावन में गायनाचार्य एक महात्मा हो गये हैं। एक राज सभा के गायक थे। राजा ने गायक से कहा—"तुम दीपक राग जानते हो?" गायक ने कहा—"हाँ जानता तो हूँ।" "तो तुम दीपकों को अपना राग गाकर जला सकते हो?" राजा ने पुनः

---

* पञ्चविध समोपासना वृष्टि में भी करनी चाहिये। पूर्व की वायु हिंकार है, उत्पन्न मेघ प्रस्ताव है, जो वर्षा होती है वह उद्गीथ है, बिजली का चमकना, मेघों का गरजना यही प्रतिहार है और (मेघों का जल ग्रहण करना यही निधन है।)

पूछा। गायक ने नम्रता के साथ कहा—"अन्नदाता ! मैं दीपक राग गाकर दीपकों को तो जला सकता हूँ, किन्तु उस राग के गाने से उष्णता अत्यधिक बढ जायगी। उसकी शान्ति का उपाय मैं नहीं जानता।"

ससार मे राजहठ और त्रियाहठ तो प्रसिद्ध ही है। राजा को बडी उत्सुकता हुई, केवल गायन से दीपक कैसे जल जायेंगे। उसने गायक से दीपक राग गाने का अत्यन्त आग्रह किया। राजा के आग्रह को राजगायक कैसे टाल सकता था। यमुना किनारे बिना जलाये सहस्रों दीपक रखे गये। गायक ने दीपक राग का ठाठ खडा किया स्वर भरे और ऐसे स्वरों को ताल लय के साथ गाया कि देखते-ही-देखते समस्त दीपक एक साथ जल उठे। दीपकों के साथ-ही-साथ उष्णता के कारण गायक का गला भी जल गया। राजा का क्षण भर को मनोविनोद हुआ। गायक जीवन भर के लिये वाणीहीन बन गया। वह बडे कष्ट से एक आध शब्द बोल सकता था। उसे बडी ग्लानि हुई और वह गायकी छोडकर पृथ्वी पर विचरण करने लगा।

एक बार विचरते विचरते वह राजस्थान के एक घोर वन में चला गया। वहाँ एक स्त्री सूखी लकडी बीन रही थी। वह लकडी बीनती जाती थी और कुछ गाती भी जाती थी। ये गायक तो राग के रोगी ही थे, उसके सस्वर शास्त्रीय गायन से आकर्षित होकर उसके पीछे पीछे फिरने लगे।

जब स्त्री को प्रतीत हुआ कोई पुरुष मेरा पीछा कर रहा है, तो उसने चौंककर पूछा—"तुम कौन हो ?"

गायक डर गया, कि इसने कुछ अन्यथा तो नहीं समझ लिया। अत. उसने बडे कष्ट से-'माता' यह शब्द कहा।

शब्द सुनते ही वह स्त्री समझ गयी। उसने कहा—"तुम गायक हो ?"

गायक ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया तब उस स्त्री ने कहा-"प्रतीत होता है, तुमने दीपक राग गाया है, इसका प्रतीकार न जानने से ही तुम्हारी यह दुर्दशा हुई है।"

अकस्मात् एक अपरिचित स्त्री के मुख से अपनी सच्ची बात सुनकर गायक के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वह समझ गया और माँ माँ कहकर रुदन करने लगा।

दयामयी महिला ने बड़े स्नेह से कहा—"बैठो, मैं अभी तुम्हारी चिकित्सा करती हूँ।"

यह कहकर उसने गायक को पास बिठाकर मेघ राग का ठाठ बाँधा और फिर साधकर इस ताल स्वर लय के साथ उसने गाना आरम्भ किया, कि मन्द मन्द पूर्वी वायु चलने लगी। देखते-देखते आकाश मंडल मे मेघ छाने लगे। और शनैः शनैः उमड़ घुमड कर बादल बरसने लगे, बिजली चमकने लगी। उस वर्षा के जल से गायक सिर से पैरों तक भीग गया—सराबोर हो गया। कुछ काल मे देवी ने अपना गायन बन्द किया, मेघ तितर बितर हो गये। किन्तु मेघ राग के जल से गायक का गला ठण्डा पड़कर खुल गया, वह भला चंगा हो गया।

उसने देवी की वन्दना की, उनके चरणों में मस्तक नवाकर प्रार्थना की—"मुझे मेघ राग सिखा दो।"

देवी ने कहा—"मुझे सिखाने का अधिकार नहीं है। यदि आप मेघ राग तथा और भी दूसरे राग सीखना चाहें तो श्रीवृन्दावन के निधि वन मे मेरे गुरुजी रहते हैं। उनसे जाकर सीख सकते हैं।"

गायक वहाँ से सीधा वृन्दावन गया और उन महात्मा के

शरणापन्न होकर ससार मे सर्वश्रेष्ठ गायक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ये ही गायक अकबर बादशाह के सभा गायक तानसेन (तनक्रू मिश्र) हुए और वे महात्मा ललिता सखी के अवतार महात्मा हरिदास थे। गायन मे बडी सामर्थ्य होती है।

वर्षा है क्या ? अग्नि में जो धुँआ निकलता है, वह धुआँ आकाश में जाकर सूर्य की विशिष्ट किरणों में समा जाता है। इससे वे किरणें समुद्र मे से, नदियो से, कूप तालावों मे से तथा प्राणियों के शरीरो मे से जल खींचने में समर्थ हो जाती हैं। वह जल वाष्प रूप बनकर मेघ का रूप धारण कर लेता है। जब सूर्य आकाश मे प्रचण्ड रूप से तपते हैं तो उन मेघो मे वर्षण शक्ति आ जाती है, वर्षा हो जाती है।

मेघ आकाश मे रहते हैं, आकाश का गुण शब्द है, शब्द नित्य है। प्रत्येक शब्द रागमय है। जैसे प्रत्येक अक्षर मत्रमय है। प्रत्येक वस्तु औषध है, किन्तु कौन-कौन अक्षर मिलाने से मत्र बनेगा, इसे मंत्रज्ञ ही जान सकते हैं। कौन-कौन सी औषधियो का योग करने पर रसायन या वाजीकरणीय ओषधि निर्माण हो जायगी, इसे सद्वैद्य ही जान सकता है। इसी प्रकार कौन से वाद्यों से राग बनाने पर उसकी ध्वनि में ऐसी शक्ति आ जायगी, कि आकाश मंडल में इधर-उधर छितरे हुए मेघ एकत्रित होकर वर्षा करने लगे, इसे शास्त्रीय सगीत ज्ञाता ही जान सकता है। मेघ सदा धूम बनते हैं, जेसा धुआँ होगा, वेसे ही प्रभाव वाले मेघ होंगें। पहले यज्ञ याग होते थे। मन्त्रों द्वारा शुद्ध घृत तथा सामग्री से आहुतियाँ दी जाती थीं, उसके धूम से जो मेघ बनते थे, वे आस्तिक्ता को बढाने वाले और कन्द मूल, फलादिकों की वृद्धि करने वाले जल को बरसाते थे। अब जो यन्त्रालयों के पत्थर के अशुद्ध कोयले के धूम से मेघ बनते हैं, वे नास्तिकता को बढ़ाने वाले

तथा फल फूलों को नाश करने वाले होते हैं। ऐसे यन्त्रालयों के समीप के आम्रादि वृक्ष प्रायः फल नहीं देते। देते हैं तो बहुत न्यून तथा छोटे-छोटे। मन्त्रों द्वारा–गायन द्वारा–जिन मेघों का आवाहन किया जायगा, वे रोग नाशक अमृतमय होंगे किन्तु अब वह विद्या लुप्तप्राय हो गयी है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! पाँच प्रकार की पीछे लोक सम्बन्धी सामवेद की पाँच प्रकार की उपासना बतायी है। उसी प्रकार वृष्टि में भी पचविध सामोपासना की जाती है।"

शौनकजी ने पूछा—"वृष्टि में पाँच प्रकार से सामोपासना कैसे की जाती है?"

सूतजी ने कहा—"वृष्टि होने मे पाँच क्रियायें होती हैं। (१) पहिले पुरवाई वायु चल के शुष्क बादलों में नमी उत्पन्न करती है। (२) फिर उस नमी से मेघ उत्पन्न होते हैं। (३) मेघ उत्पन्न होने पर आकाश से पानी बरसता है। (४) तदनन्तर बिजली चमकती है, आकाश में गर्जन होती है। गरज गरजकर उमड घुमडकर पानी बरसता है। (५) तदनन्तर वर्षा समाप्त हो जाती हैं। खाली मेघ पुनः जल ग्रहण करते हैं।

इन पाँचो क्रियाओं में (१) हिंकार, (२) प्रस्ताव, (३) उद्गीथ, (४) प्रतिहार, और (५) निधन–जो पाँच सामवेद के अत्वङ्ग बताये हैं, जिनकी व्याख्या पीछे की गयी है। उन पाँचो अत्वङ्गों की इन पाँच क्रियाओं के साथ भावना करके पाँचो स्तोत्रों का गायन करे।

जैसे हिंकार स्तोत्र का गायन करते हुए यह भावना करे कि अब मेघों को पिघलाने वाली पुरवाई वायु चलने लगी। फिर प्रस्ताव स्तोत्र का गायन करे तो भावना को बरसाने वाले मेघ आने लगे। फिर उद्गीथ का गायन करे तो यह भावना करे वर्षा

होने लगी। फिर प्रतिहार का गायन करता रहे और देखता रहे उमड घुमडकर बिजली चमकाकर वर्षा हो रही है। तदनन्तर निधन स्तोत्र का गायन करके यह भावना करे मेघ वर्षा करके पानी से रिक्त होकर वर्षा बन्द करके पुन. जल ग्रहण करने चले गये।

जो इस रहस्य को भला भॉति जानता है और जानकर इन स्तोत्रों का विधिवत् गान करता है। इस भावना से वर्षा मे साम की उपासना करता है, उसके निमित्त वर्षा बरस जाती है और वह जब भी चाहे तभी वर्षा करा सकता है। दुर्भिक्ष के समय बहुत से सामवेदीय सामवेद गायन करके वर्षा करा देते थे।"

शौनकजी ने पूछा—"क्या वर्षा कराने के लिये उद्‌गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता आदि पॉच ऋत्विज गायकों की आवश्यकता अनिवार्य है ?"

सूतजी ने कहा—"ये ऋत्विज तो यज्ञ यागों मे आवश्यक होते हैं। वर्षा आदि करानी हो तो पाँचों स्तोत्रों को एक ही व्यक्ति गाकर वर्षा करा सकता है। यह मैंने वृष्टि में पचविध सामोपासना का वर्णन किया। अब जैसे जलों म पच प्रकार की सामोपासना की जाती है। उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय—*जो जन जानत जाहि पचविध करत उपासन।*
सामवेद विधि सहित करै मन्त्रनि को गायन॥
तिहि हित वर्षा होइ अवर्षण दुख न सतावै।
जहँ चाहे जल मिलै नहीं जल बिनु रहि जावै॥
जब चाहे दुरभिक्ष में, वर्षा तुरत कराइगो।
दुखी भये दुष्काल में, जीवन सुखी बनाइगो॥

इति छांदोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय का
तृतीय खण्ड समाप्त

जल में पञ्चविध सामोपासन

[११२]

सर्वास्वप्सु पञ्चविधँ सामोपासीत मेघो यत्संप्लवते स हिंकारो यद्वर्षति स प्रस्तावो याः प्राच्यस्यन्दन्ते स उद्गीथो याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः समुद्रो निधनम्॥१॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० ४ ख० १ म०)

छप्पय

ऐसे ही जल माहिँ उपासन साम करहि नित।
जल है पाँच प्रकार सुनो तिनि रहस समाहित॥
घनीभूत जो मेघ नीर हिंकार बतायो।
बरसा जल प्रस्ताव नदी जल द्विविध कहायो॥
पूर्व ओर सरिता बहैं, नीर कह्यो उद्‌गीथ वह।
पश्चिमीय प्रतिहार है, निधन समुद्रहिँ नीर यह॥

यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्ममय है, यज्ञमय है। जैसे अग्नि सर्वत्र व्याप्त है, जहाँ दो वस्तुओं को रगड़ो वहीं अग्नि उत्पन्न हो जायगी।

---

* सभी भाँति के जलों में पाँच प्रकार की सामोपासना करनी चाहिये। जलों में जो मेघ का घनीभूत जल है वही मानों हिंकार है। बरसने वाला जल ही प्रस्ताव है, पूर्व की ओर प्रवाहित होने वाली सरिताओं का जल उद्‌गीथ है पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों का जल प्रतिहार है तथा समुद्र का जल निधन है।

अग्नि प्रत्यक्ष होकर-मन्थनकर्ता को दर्शन देकर पुनः अपने स्वरूप में विलीन हो जायगी, महाग्नि में मिल जायगी। इसी प्रकार जल भी सर्वत्र व्याप्त है। एक यन्त्र विशेष को रख दो, तो उसमें विना जल भरे ही बरफ जम जायगी। पूछे उसमें जल कहाँ से आ गया? तो वायु में व्याप्त जो जल कण हैं, वे ही एकत्रित होकर हिम बन गये। उपासना भावानुसार होती है, जहाँ जिस स्थान पर जैसी भावना करके तुम उपासना करोगे, वैसा ही फल तुम्हें प्राप्त हो जायगा, क्यों यह पुरुष श्रद्धामय है, भावमय है। तुम्हारी श्रद्धा जैसी होगी, जैसा ही भाव होगा, वैसे ही तुम बन जाओगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सामवेद की पचविध उपासना का प्रकरण चल रहा है। पाँच जो सामवेद के मुख्य-मुख्य स्तोत्र हैं जिन्हें यज्ञों में पाँच प्रकार के ऋत्विज गान करते हैं। यज्ञों में सामवेद के गाने वाले प्रायः तीन ही ऋत्विज होते हैं, ब्रह्मा भी कभी-कभी साम गायन करते हैं। नहीं तो प्रस्तोता प्रस्ताव का गायन करते हैं, उद्‌गाता उद्‌गीत का, और प्रतिहर्ता प्रस्ताव का। तीनों जब तीन-तीन ऋचाओं को गाते हैं वह हिंकार कहाता है और जब सब मिलकर गाते हैं उसी की निधन संज्ञा है। यही साम की पचविध उपासना कहलाती है। इन पाँचों का जिन पाँच प्रकार की सम्बन्धित वस्तुओं से सम्बन्ध करके तत्तत् वस्तुओं के साथ सम्बन्ध जोड़कर भावना की जाती है,वह उस वस्तु की पचविध सामोपासना कहलाती है। अब जैसे जल को ही ले लीजिये। वास्तव में देखा जाय, तो जल तो सब एक ही है। फिर भी पात्र भेद से जल के पाँच भेद कर दिये हैं।

१—एक वाष्प रूप में जल-सूर्य को वारि तस्कर कहा है। वह नद नदियों से, वापी कूपों से, छोटे बड़े तालाब, सरोवर

पुष्करिणी आदि से, समुद्र मे से तथा प्राणियों के शरीरों में से जल चुरा ले जाता है। चुराना उसे कहते हैं, कि दूसरो की रखी वस्तुओं को इस प्रकार उठा ले जाय, कि दूसरे लोगों को उठाते समय पता भी न चले, कब किसने अमुक वस्तु उठा ली। हम देखते हैं हमारे सामने कल इस गड्ढे में पानी भरा था। आज उतना पानी नहीं है। सूख गया। कौन सोख गया? वारि-तस्कर जल का चोर सूर्य चुरा ले गया। सूर्य जो जल को चुराकर ले जाता है, उसी के बादल बन जाते हैं। धूमकणों के साथ जब वे जलकण मिलकर बादल बनकर घटा के रूप घनीभूत होकर आकाश के सहारे इधर-उधर भ्रमण करते हैं, तो एक भेद तो घनरूप जल का यह हुआ।

२—जब वे ही बादल उष्णता के आधिक्य के कारण पिघल कर बरसने लगते हैं, तो वर्षा का जल यह जल का दूसरा रूप हुआ।

३—वही वर्षा का अथवा पिघले हिम का गला हुआ जल जब नदियों मे प्रवाहित होता है, तो यह नदियो का जल, यह जल का तीसरा रूप है। कुछ नदियाँ उत्तर से पूर्व की ओर बह कर समुद्र मे मिलती हैं, कुछ पूर्व से बहकर पश्चिम समुद्र मे मिलती हैं। अतः एक तो उत्तर से पूर्व की ओर बहती नदियों का जल।

४—दूसरा जो पूर्व से पश्चिम की ओर नदियाँ प्रवाहित होती हैं, उनका जल। इस प्रकार दो प्रकार बहने वाले जल के हुए।

५—पाँचवाँ स्थिर रहने वाला जल जो बहे नहीं, केवल भरा रहे, अपने ही स्थान में हिलोरें मारता रहे। यह सर, सरोवर, पुष्करिणी, तालाब आदि में भरा रहता है। समुद्र का जल भी

बहता नहीं। इसलिये समुद्र भी एक बडा सरोवर तालाब ही है। अत पाँचवाँ समुद्र का जल है। इस प्रकार जल के पाँच भेद हुए। अब इन पाँचो अनङ्ग रूप जल के साथ कृत्वङ्ग भूत जो (१) हिंकार, (२) प्रस्ताव (३) उद्गीथ, (४) प्रतिहार तथा (५) निधन रूप म इन पाचो प्रकार के सामस्तोत्रा द्वारा उपासना करनी चाहिये। इन सर्व प्रथम घन रूप में घटा बनकर आकाश म घूमते हुए बादल रूप वाले जल में हिकार ऋत्वङ्ग की भावना करे।

दूसरे प्रकार बरसते हुए वर्षा के जल मे प्रस्ताव रूप जो ऋत्वङ्ग है उसकी भावना करके उपासना करे।

तीसरा जो पूर्व का ओर बहने वाली नदियों का जल है उसमें उद्गाथ ऋत्वङ्ग की भावना करके उपासना करे।

चौथा जो पश्चिम की ओर बहने वाली नदियों का जल है उसमे प्रतिहार ऋत्वङ्ग की भावना करके उपासना करे।

पाँचवाँ जो समुद्र का जल है, जो आपूर्यमाण अचल और परम प्रतिष्ठित है उसम निधन दृष्टि करके उपासना करे।

इस प्रकार जो समस्त जल म सामवेद के अनुसार पचविध उपासना करता है, उसे जल से कभी भय नहीं होता अर्थात् जल म डूबकर उसकी कभा अकाल मृत्यु नहा होती। दूसरे उसे कभी भी कहीं भी जल का कष्ट नहीं होता। उसे यथेष्ट जल प्राप्त हो जाता है। जहाँ भी जाता है, वहा उसे पर्याप्त पय की प्राप्ति होती है। वह कहीं भी कभी भी जल का अभाव अनुभव नहीं करता।

सूतजी कह रहे हैं —"मुनियो! यह मैने आपसे जल में साम की पचविध उपासना कैसे करनी चाहिये, इस प्रसग को

कहा–अब ऋतुओं में किस प्रकार साम की उपासना की जाती है, इसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

जो जा विधि कूँ जानि उपासन जल में करिहैं।
वे न भूलि कें कबहुँ डूबि कें जल में मरिहैं॥
जल ही जीवन जानि दान जल को करवावें।
वापी कूप तडाग जलाशय बहु खुदवावें॥
जल उपासना तें सकल, जीवन सुख सम्पन्न नित।
रहै सतत सम्पन्न जल, सदा प्रफुल्लित रहहिं चित॥

इति छांदोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में
चतुर्थ खण्ड समाप्त

—:—

ऋतुओं में पञ्चविध सामोपासना

[११३]

ऋतुषु पञ्चविधं सामोपासीत वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः ।
प्रस्तावो वर्षा उद्‌गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम् ।।*
(छा० उ० द्वि० प्र० ५ ख० १ मं०)

छप्पय

ऋतुनि माहिँ हू करै उपासन पाँच भाँति नर ।
साम उपासक सकल पाइँ तिहिं तैं उत्तम वर ।।
ऋतु वसन्त हिंकार ग्रीष्म प्रस्ताव सु माने ।
है वर्षा उद्‌गीथ शरद प्रतिहार हु जाने ।।
त्यागि शिशिर ऋतु पंचविध, कही वेद में ऋतु सकल ।
निधन कही हेमन्त ऋतु, विना वायु प्रानी विकल ।।

काल रूप से कृष्ण क्रीड़ा कर रहे हैं। जो आयु का कलन करता रहे, यह गिनता रहे कि इस प्राणी की कितनी आयु हो गयी है और कितनी शेष है वही काल पुरुष है (कलयति जीवानां आयुः=सः काल) यह काल संसार में जितने भी गणना करने वाले गणक हैं इन सबमें श्रेष्ठ है। औरों की गणना में

---

* इसी प्रकार ऋतुओ मे भी पाँच प्रकार से सामोपासना करे। इन पाँचों में वसन्त ऋतु हिंकार है, ग्रीष्म को प्रस्ताव समझो, वर्षा को उद्‌गीथ मानो, शरद् को प्रतिहार जानो और हेमन्त निधन है ऐसे पहिचानो।

भले ही कुछ न्यूनाधिक अन्तर पड़ जाय, किन्तु इन काल पुरुष की गणना में पल निमेष भर का भी अन्तर नहीं पड़ता, इसीलिये ये भगवत् विभूति हैं (कालः कलयतामहम्) विभूति क्या है, काल साक्षात् भगवत् स्वरूप ही हैं। समस्त प्राणियों को अपने-अपने कर्मों के लिये प्रेरित करते हैं इसलिये भी ये काल कहलाते हैं। (कलयति सर्वाणि भूतानि सः कालः) सम्पूर्ण जगत् इन काल भगवान् की प्रेरणा से ही चल रहा है। विश्व की कोई ऐसी वस्तु नहीं जो कालाधीन न हो। देवता हो, ऋषि हो, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश सभी काल के अधीन हैं। सर्ग, स्थिति तथा प्रलय के कारण भी ये काल ही हैं। समस्त प्राणी रात्रि आने पर सो जाते हैं, किन्तु ये काल कभी सोते नहीं। सदा सर्वदा जागते ही रहते हैं। काल आने पर जितने भी ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त प्राणी हैं, उत्पन्न हो जाते हैं, जब तक जिसका जितना काल है, तब तक स्थिर रहते हैं। काल आ जाने पर अन्त में विनष्ट हो जाते हैं, लोप हो जाते हैं--उनका दर्शन नहीं होता। वह काल भूत, भविष्य और वर्तमान तीन प्रकार का कहा जाता है। यह कालदेव स्वयं साक्षात् भगवान् परमेश्वर ही हैं। समस्त विश्व काल के ही सहारे चल रहा है। क्षण, दण्ड, मुहूर्त, प्रहर, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन तथा वत्सर आदि इस काल के ही भेद हैं। श्रीमद्भागवत में काल के भेद बताते हुए कहा है। काल का नाप सूर्य की गति से किया जाता है। जितनी देर में सूर्य अमुक वस्तु को पार करे उसी के अनुसार काल की गणना कल्पित की गयी है। सबसे छोटी वस्तु परमाणु को माना गया है। अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु को परमाणु कहते हैं जिसके विभाग, टुकड़े किसी प्रकार हो ही न सकें, वह किसी भी प्रकार किसी भी यन्त्र से दिखायी न दे

वही परमाणु हे। वह सबसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म काल का मापक जो काल की छोटी से छोटी अवस्था से लेकर वडी से वडी अवस्था का भोग करे वह महान् से भी महान् काल है।

अब छोटी से-छोटी अवस्था से काल का विभाग कीजिये। जिसका अस्तित्व है, किन्तु वह दृष्टि द्वारा दीखता नहीं वही परमाणु हे। दो परमाणु मिलने पर 'अणु' होता है, अणु का भी दृष्टि से साक्षात्कार नहीं होता। तीन अणु मिलने पर एक 'त्रिसरेणु' होता है। त्रिसरेणु दृष्टिगोचर होता है। किसी झरोखे से जो सूर्य की किरणें हमारे घर के भीतर आती हैं, उन किरणो के प्रकाश मे जो बहुत ही छोटे छोटे आकाश में उडते हुए कण से दृष्टिगोचर होते हैं, उन्हीं का नाम 'त्रिसरेणु' है। उस त्रिसरेणु को सूर्यदेव जितनी देर में पार करें उस काल का नाम त्रिसरेणु काल है। तीन त्रिसरेणुओं की एक 'त्रुटि' कहलाती है। तीन त्रिसरेणुओं को पार करने में सूर्य को जितना समय लगे वही 'त्रुटि काल' है। काल की गणना में 'त्रुटि' को ही सबसे छोटा काल माना गया है। सौ त्रुटि का एक 'वेध' कहलाता है। तीन वेध का एक 'लव' तीन लव का एक निमेष, तीन निमेष का एक 'क्षण', पाँच क्षण की एक 'काष्ठा', पन्द्रह काष्ठा का एक 'लघु', पन्द्रह लघु की एक 'नाडिका' या दण्ड होता है। दो नाडिका का एक 'मुहूर्त' दिन के घटने वढने के कारण छे या सात नाडिका का एक 'प्रहर' या याम होता हे। चार चार प्रहर के मनुष्यों के दिन रात्रि होत हैं। अर्थात् दिन और रात्रि म आठ प्रहर होते हैं। पन्द्रह दिन रात्रि का एक पक्ष कहलाता है। दो पक्ष (कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष) मिलकर एक मास होता हे। दो मास की एक ऋतु होती है। ऐसी दो-दो मास की ६ ऋतुएँ होती हैं। उनके नाम (१) हिम, (२) शिशिर, (३) वसन्त, (४) ग्रीष्म, (५) वर्षा और (६) शरद

ये नाम हैं। अगहन और पौष हिम ऋतु, माघ और फाल्गुन शिशिर, चैत्र और वैशाख वसंत, ज्येष्ठ और आषाढ़ ग्रीष्म, श्रावण और भाद्रपद वर्षा तथा क्वार और कार्तिक ये शरद ऋतु कहलाते हैं। कोई ६ का समाहार तीन में ही कर देते हैं जैसे कार्तिक, अगहन, पौष और माघ ये चार महीने शीत ऋतु फाल्गुन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ ये चार ग्रीष्म ऋतु तथा आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और क्वार ये वर्षा के चातुर्मास। इस प्रकार तीन में ही छः ऋतुओं को मान लेते हैं। कोई-कोई वर्षा को पृथक् न मानकर ग्रीष्म और शीत दो ही ऋतु मानते हैं। अर्थात् कार्तिक, अगहन, पौष, माघ, फागुन और चैत्र शीत ऋतु और वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ, श्रावण, भादों और क्वार ये छै ग्रीष्म ऋतु। इस प्रकार दो में ही छः ऋतुओं का समाहार कर देते हैं। वेद में पाँच ही ऋतु मानी हैं। * वहाँ हेमन्त और शिशिर इन दो ऋतुओं को एकत्रित करके पाँच ही ऋतु मानी हैं। हमारी इस छान्दोग्य उपनिषद् में भी हेमन्त और शिशिर को एक ही ऋतु मानकर पाँच ऋतुएँ ही मानी हैं और इन पाँचों ऋतुओं के ही अनुसार पचविध सामोपासना बतायी गयी है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जल में पञ्चविध सामोपासना बताकर अब ऋतुओं में पाँच प्रकार की सामोपासना का वर्णन किया जाता है। वसन्त ऋतु भगवत् विभूति मानी गयी है (ऋतूनां कुसुमाकरः) इसलिये वसंत को पहिली ऋतु मानते हैं, इसलिये चैत्र वैशाख वसन्त ऋतु में हिंकार की भावना करके उपासना

---

* मास द्वयात्मक. कालः ऋतु प्रोक्तो विचक्षणै।
यत्रतु द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवः इति श्रुतम्।
तत्र हेमन्त शिशिरयोरेकत्रीकरणं विवक्षितम्॥

करे। अब दूसरी ऋतु ज्येष्ठ, आषाढ़ गीष्मऋतु है इसमें 'प्रस्ताव' की भावना करके उपासना करे। वसंत में जो खेतों में अन्न हो जाता है वह ज्येष्ठ, आषाढ़ में ही घर मे आता है। अतः सग्रह का प्रस्ताव इसी ऋतु में होता है।

अब तीसरी ऋतु श्रावण और भाद्रपद वर्षा ऋतु है, इसमें उद्‌गीथ की भावना करके उपासना करे। वर्षा मे राजा, सैनिक, यति आदि एक स्थान पर निवास करते हैं। लडकी-लडके झूला डालकर उस पर पेंग बढ़ाते हुए मल्हार राग का उद्‌गीथ गायन करते हैं, कृषकों को वर्षा के कारण बड़ा हर्ष होता है, अत्यन्त प्रसन्नता की ऋतु होने से इसमे उद्‌गीथ की भावना करनी चाहिये।

क्वार, कार्तिक ये शरद् ऋतु हैं। शरद् मे गर्मी समाप्त होने और जाडा आरम्भ होने से ऋतु परिवर्तन की यह सन्धि ऋतु है, इसमे प्रायः रोग हो जाया करते हैं। अतः रोगियो को एक स्थान से दूसरे स्थानों मे प्रतिहरण परिवर्तन करते रहते है अतः इस ऋतु मे प्रतिहार की भावना करके उपासना करनी चाहिये। अगहन, पौष, माघ और फाल्गुन ये हेमन्त तथा शिशिर ऋतुएँ हैं। इसमे ठडी वायु चलती और सरदी बहुत पडती है। वृद्ध पुरुषों को ठंडी बहुत लगती है। इन्हीं ऋतुओं मे मृत्यु संख्या अधिक हुआ करती है अतः हेमन्त में 'निधन' भावना से सामोपासना करनी चाहिये। इस प्रकार यह ऋतुओं मे पञ्चविध सामोपासना बतायी अब इन ऋतुओं मे की हुई पञ्चोपासना का फल भी श्रवण करें।

जो लोग इस प्रकार ऋतुओं मे पञ्चविध सामोपासना करते हैं। इन पूर्वोक्त पॉच ऋतुओं में हिंकार, प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार और निधन इन भावनाओं से उपासना करते हैं। उन

उपासकों के लिये वसन्त आदिक जितनी भी ऋतुएँ हैं वे सब अपने अपने समय के भोग्य पदार्थों को उपस्थित करती हैं। उसके लिये ऋतु सम्बन्धी भोग प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। ऐसा उपासक ऋतुमान् होता है, अर्थात् उसे ऋतु सम्बन्धी समस्त भोग स्वत ही प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। सभी ऋतुएँ उसके लिये अनुकूल तथा सुखद बन जाती हैं।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह मैंने ऋतु सम्बन्धी पञ्चविध सामोपासना कही। अब पशुओं में जिस प्रकार पञ्चविध सामोपासना की जाती है, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा। आशा है आप इसे समाहित चित्त से श्रवण करने की कृपा करेंगे।"

छप्पय

सामोपासन जानि पञ्चविध ऋतुनि करे जो।
सब ऋतु में वह पाइ मनोवाञ्छित फलकूँ सो॥
काल-काल में करें व्यवस्था ऋतु सब ताकूँ।
भोग्य रूप फल मिलैं समय पै सबई वाकूँ॥
ऋतु सम्बन्धी भोग जो, तिनितैं है सम्पन्न नित।
नर होवै ऋतुमान वह, ऋतु उपासना देइ चित॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में
पञ्चम खण्ड समाप्त

पशुओं में पञ्चविध सामोपासना

[११४]

पशुषु पञ्चविधं सामोपासीताजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम् ॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० ६ ख० १ म०)

छप्पय

ऐसे ही सब पशुनि माहिँ सामोपासन करि ।
ताहि पञ्चविधि करे प्रेम तैं निज हिय महँ धरि ॥
बकरा कूँ हिंकार करे प्रस्ताव भेड़ महँ ।
गौअनि महँ उद्गीथ परम पावन सब पशु महँ ॥
अश्व माहिँ प्रतिहार की, करे भावना उपासक ।
निधन पुरुष में भाव करि, पुरुष सबनि को प्रशासक ॥

पशु शब्द का अर्थ है, जो सबको एक अविशेष भाव से देखे । (अविशेषेण सर्वं पश्यति इति=पशु) यज्ञों में एक पशु यज्ञ होता है, उसमें एक यूप-खम्भा-होता है, उसमें बलि के लिये जो भी बाँध दिया जाय, उसी की 'पशु' संज्ञा बतायी गयी है । फिर

---

* इसी प्रकार पशुओं में भी पाँच प्रकार की सामोपासना करनी चाहिये । जिनमें अज-बकरा-हिंकार है । अवि-भेड़ें-प्रस्ताव हैं । गौएँ उद्गीथ हैं अश्व प्रतिहार हैं और पुरुष ही निधन है ।

चाहे ऊँट हो अथवा भेड, बकरा, घोडा कोई भी उसको 'पशु' इस शब्द से पुकारते हैं।❀

पशुओ की सख्या बहुत है, किन्तु सामान्यतया पशु दो प्रकार के होते हैं। एक ग्राम्य पशु–गाँव में रहने वाले, दूसरे अरण्य पशु–वन मे –जगल मे–रहने वाले। सात ग्राम्य पशु ये हैं–(१) बकरा, (२) पुरुष, (३) भेड, (४) घोडा, (५) गौ, (६) गदहा और (७) खच्चर। सात आरण्य पशु ये हैं—(१) कुत्तों के से पैर वाले कूकर सियार आदि, (२) दो खुर वाले हरिण आदि, (३) हाथी, (४) वानर जाति, (५) पङ्खों से उडने वाले पक्षी, (६) जल मे रहने वाले और (७) रेंगकर चलने वाले सर्प आदि।

यहाँ हमारी इस छादोग्य उपनिषद् में जिन पाँच पशुओ में हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन रूप से पचविध की उपासना बतायी है, उनमें ग्राम्य पशु ही लिये गये हैं। गदहा और खच्चर ये अपवित्र पशु होने के कारण निकाल दिये गये हैं। केवल बकरा, भेड, गौ, अश्व और पुरुष ये पाँच ही उपासना के लिये प्रशस्त माने हैं। यहाँ पशु से बोलचाल मे सींग पूँछ और चार पैर वाले जतु को ही पशु नहीं माना गया है। यदि चार पैर वाले सींग पूँछ युक्त पशु का ही अभिप्राय होता, तो उसमें पुरुष की गणना क्यों की जाती ? पुरुष के न तो सींग पूँछ ही हैं और न चार पैर ही। यह तो दो पैर वाला सींग पुच्छ विहीन पशु है। यहाँ पशु शब्द से जीव मात्र का अभिप्राय समझना चाहिये। जैसे भगवान् शंकर का नाम पशुपति है। तो यहाँ पशु

❀ उष्ट्रो वा यदि वा मेषश्छागोवा यदि वा हय.।
पशुस्थाने नियुक्तानां पशु शब्दोऽभिधीयते ॥
(तिथि तत्वम्)

करके स्थावर जंगम सभी प्रकार के जीवों के पति होने का अभिप्राय है। ब्रह्माजी से लेकर स्थावर-तृण पर्यन्त जितने भी चर अचर जीव हैं। सबकी पशु संज्ञा है, उन सब के पति-स्वामी महादेवजी हैं। इसीलिये वे पशुपति कहलाते हैं।*

वराह पुराण में भगवान ने स्वयं कहा है—"मैं ही समस्त विद्याओं का पति हूँ, मैं ही आदि पुरुष तथा सनातन हूँ। मैं पति भाव से- पशुओं के मध्य में व्यवस्थित हूँ। अतः तुम पशुपति नाम से लोक में विख्यात होओगे।"[१]

इस प्रकार मुख्य जो ग्राम्य पशु हैं, ग्राम्य जीव हैं उनमें पञ्चविध सामोपासना कैसे करें, इसी को यहाँ ऋतुओं के अनंतर बताते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यहाँ सामवेद की हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन भाव से पाँच प्रकार की उपासना का प्रकरण चल रहा है, अतः जिन-जिन में मुख्य रूप से पाँच प्रकार की उपासना हो सकती है। उसको बताते हुए पशुओं में पंचविध सामोपासना कैसे हो सकती है इसे बताते हैं। अज को यज्ञ पशुओं में सर्वप्रथम कहा है (अजः पशूनां प्रथमः) अतः पहिले अज-बकरे-में हिंकार की भावना करके उपासना करे। फिर बकरा, भेड़ प्रायः साथ-साथ रहते हैं। जो

---

* ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च पशवः परिकीर्तिताः।
तेषां पतिर्महादेवः स्मृतः पशुपतिः श्रुतौ॥
(चिन्तामणि)

१ ग्रहञ्च सर्वं विद्यानां पतिराद्यः सनातनः।
ग्रहं वै पति भावेन पशुमध्ये व्यवस्थितः।
ग्रतः पशुपतिर्नाम त्वं लोके ख्याति मेष्यति॥
(वराह पुराणे)

लोग बकरी पालते हैं वे ही भेडों को भी पालते हैं, इसलिये भेडों मे प्रस्ताव की भावना करे। गौएँ परम पवित्र हैं, इनका यशोगान किया जाता है अत· गोओं मे उद्गीथ की भावना करके उपासना करे। घाडा पुरुषो का इधर से उधर ले जाते हैं वे सवारी के काम मे आते है, अतः उनमें प्रतिहार की भावना करे।

जितने ये ग्राम्य पशु हैं, वे सब पुरुप वर्ग पशु के अधीन रहते हैं अत· पुरुप को ही 'निधन' माना है। पुरुप मे निधन भावना करके उपासना करे।

इस प्रकार जो पशुओ मे पॉच प्रकार से सामोपासना करेगा, उसे दूध पीने के लिये गौएँ, वाहनो के लिये हाथी, घोड़े, ऊँट तथा सुन्दर-सुन्दर वेल यथेष्ट मात्रा मे प्राप्त होते हैं। उनके यहाँ काम मे आने वाले तथा दूध देने वाले पशुओं की कभी कमी नहीं रहती है। वह पुरुप पशुमान होता है। उसकी पशुशाला में सुन्दर-से-सुन्दर पशु भरे रहते हैं और पशुओं द्वारा जो प्राप्त भोग सामग्रियाँ हैं, उनकी उसके यहाँ कमी नहीं रहती। वह गोदान, अश्वदान, गजदान तथा वृषभदान करता ही रहता है। जिससे सर्वत्र उसकी कीर्ति व्याप्त हो जाती है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह मैंने अत्यन्त ही सक्षेप में पशु विपयक पॉच प्रकार की सामोपासना कही। अब इसी क्रम में प्राण विपयक पॉच प्रकार की जो सामोपासना बतायी है, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा। पॉच प्रकार की प्राणोपासना बताकर यह हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन रूप पञ्चोपासना समाप्त हो जायगी अतः यह प्राणोपासना अतिम पञ्चविध उपासना है।

छप्पय

पशुनि माहि हिंकार आदि भेदनि कूँ जानें।
सामवेद अनुसार पंचविध तिनिकूँ मानें॥
जानि मानि कें करै उपासन जो चितलाई।
उनिकें कबहुँ न रहै पशुनि की घर कमताई॥
गाय भैंस पशु दूध के, अश्व बैल बाहनन हित।
होवै वह पशुमान नर, पशु-फल भोगै भोग नित॥

इति छांदोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय का
षष्ठ खण्ड समाप्त

प्राणों में पञ्चविध सामोपासना

[११५]

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत । प्राणो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो-निधनं परोवरीयाँसि वा एतानि ॥*

(छां० उ० द्वि० अ० ७ ख० १ म०)

छप्पय

प्राननि के हू माहिँ उपासक करै उपासन।
हों क्रमशः उत्कृष्ट विशिष्ट हु उत्तर बढ़ि गुन ॥
मुख्य प्रान हिंकार वाक् प्रस्ताव बतायो।
चक्षु माहिँ उद्गीथ श्रोत प्रतिहार जतायो ॥
कह्यो निधन मन कूँ मुनिनि, यही पंचविध उपासन।
प्राण दीठि युत साम की, क्रमशः बढ़ि-बढ़ि कहे गुन ॥

प्राणी जिसके द्वारा जीवन धारण करें उसे प्राण कहते हैं। (प्राणिति एभिः इति=प्राणाः) मुख्य पाँच प्राण बताये हैं। हृदय

---

* प्राणों मे पंचविध एक से दूसरा उत्कृष्ट उससे तीसरा ऐसे क्रम-क्रम से गुण विशिष्ट साम की उपासना करे। प्राण ही हिंकार है, वाक् को प्रस्ताव जानो, चक्षु को उद्गीथ मानो, श्रोत्र प्रतिहार है, और मन को निधन मानकर उपासना करनी चाहिये। ये परोवरीय (उत्तरोत्तर उत्कृष्ट) उपासनायें हैं।

में मुख्य प्राण रहते हैं, गुदा में अपान, नाभि में समान, उदान कण्ठदेश में और व्यान समस्त शरीर में प्राप्त है। किन्तु यहाँ छान्दोग्य उपनिषद् में पाँच इन्द्रियों को पाँच प्राणों का अधिष्ठान बताया है। जैसे मुख्य प्राण घ्राणेन्द्रिय है। वाणी अपान है। चक्षु समान है, श्रोत उदान है और मन व्यान है। यहाँ पर इन इन स्थानों में यह प्राण रहते हैं। ऐसा नहीं समझना चाहिये। यहाँ तो एक से दूसरी इन्द्रिय की उत्कृष्टता बतायी है। जैसे घ्राण इन्द्रिय है घ्राण इन्द्रिय का काम है, उसके सम्मुख जो पदार्थ आ जाय उसे सूँघकर यह बतादे कि इसमे सुगध है या दुर्गंध, गंध भी मृदु है या तीव्र, फिर वह गंध मीठी है, भीनी है, खट्टी है या कसेली है। इस प्रकार सूँघकर वह गन्ध का ज्ञान करा देती है। किन्तु उन्हीं पदार्थों की गन्ध का ज्ञान करावेगी जो उसके समीप हों, दूर की वस्तुओं का ज्ञान वह नहीं करा सकती। अब दूसरी इन्द्रिय है वाणी। वाणी घ्राण की अपेक्षा श्रेष्ठ है, क्यों श्रेष्ठ है, कि घ्राण इन्द्रिय तो सम्मुख आयी वस्तु का ही ज्ञान करावेगी वाणी तो जो सम्मुख हो, दूर हो, इस लोक की वस्तु हो, परलोक की वस्तु हो सबके विषय में बोल सकती है। वह अप्राप्त वस्तु का भी निरूपण कर सकती है। अतः घ्राण से वाणी उत्कृष्ट है। अब तीसरी इन्द्रिय चक्षु है। वाणी तो सुनी हुई वस्तु को ही कहती है, उसमें स्वयं देखने की शक्ति नहीं। एक महात्मा वन में रहकर तपस्या कर रहे थे। उनके पास में ही कुछ वधिक एक पशु का वध करने वाले थे। पशु भाग गया। महात्मा जी की कुटिया के ही सामने होकर गया। वधिकों ने आकर पूछा—"महात्माजी! इधर से अमुक पशु भाग कर गया है क्या? आपने देखा है?"

महात्मा ने सत्य बोलने का व्रत ले रखा था, यदि सत्य बताते

है, तो वधिक उसे पकड़कर मार डालेंगे, बताने के कारण हिंसा में सहायता देने से पाप लगेगा। यदि यह कहे कि हमने नहीं देखा, तो असत्य भाषण का पाप लगेगा। अतः उन्होंने गोल माल बात कह दी। महात्मा बोले—"देखो भैया, जिसने देखा है (अर्थात् आँखों ने) उनमें तो बोलने की शक्ति नहीं और जो वाणी बताती है, उसमें देखने की शक्ति नहीं। दूसरों द्वारा सुनायी या बताई बात पर पूरा विश्वास नहीं किया जा सकता। अतः हम कुछ भी कहने में असमर्थ हैं। यहाँ ऋषि ने वाणी को देखने में असमर्थ बताया वाणी की अपेक्षा चक्षु श्रेष्ठ है, क्योंकि चक्षु विषय का प्रत्यक्ष दर्शन करके बताती है। अब चौथी इन्द्रिय कर्ण या श्रोत्र है। आँखें तो सम्मुख की वस्तुओं को देख सकती हैं। पीठ पीछे क्या है, दायें बायें क्या है, इसे देखने में वे सर्वथा असमर्थ हैं। किन्तु श्रोत्र इन्द्रिय चारों ओर के शब्दों को सुनने में समर्थ है। आप सामने से बोलिये, पीछे से बोलिये, दायें बायें से बोलिये। बोलने वाला भले ही दिखायी भी न दे, उसकी वाणी सुनकर ही कान बता देंगे, यह अमुक की वाणी है। अतः चक्षु की अपेक्षा श्रोत्र इन्द्रिय श्रेष्ठ है। अब पाँचवी इन्द्रिय मन है। मन श्रोत्र से क्या सभी इन्द्रियों से श्रेष्ठ है। सबका राजा है। सब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों को ला-लाकर मन में ही रख देती हैं, मन ही इन्द्रियों को कर्म करने में प्रेरित करता है। अतः समस्त इन्द्रियों में मन ही सर्व श्रेष्ठ इन्द्रिय है। वह भगवान् की विभूति है। (इन्द्रियाणां मन-श्चास्मि) इस प्रकार प्राण, वाणी, चक्षु, श्रोत्र और मन इनमें क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन इनकी उपासना करनी चाहिये।

सूतजी कहते हैं— "मुनियो! सामवेद की (१) हिंकार,

(२) प्रस्ताव, (३) उद्गीथ, (४) प्रतिहार और (५) निधन इस भाँति पाँच प्रकार की उपासना का प्रकरण चल रहा है, ये पाँच प्रकार के सामवेद के स्तोत्र हैं, जिनमें से तीन ऋत्विज क्रम-क्रम से तीन-तीन ऋचाओं का जो गान करते हैं, उसे हिंकार कहते हैं। प्रस्तोता जिसका उच्चारण-गान-करता है, उसे प्रस्ताव कहते हैं। उद्गाता जिनका गान करता है उसे उद्गीथ कहते हैं। प्रतिहर्ता जिसका गान करता है उसे प्रतिहार कहते हैं और सब मिलकर जिसका गान करते हैं उसे निधन कहते हैं। इन पाँचों क्रत्वङ्गों में विभिन्न वस्तुओं में पञ्चोपासना कही गयी है। अब प्राण विषयक पाँच प्रकार की सामोपासना कहते हैं। इनमें एक से दूसरी, दूसरी से तीसरी इस प्रकार क्रमशः परोवरीय-अर्थात् उत्तरोत्तर उत्कृष्ट उपासना है।

अब इनमें मुख्य प्राण जो सर्वप्रथम है और जो घ्राणेन्द्रिय नाक से आता जाता रहता है, इसे हिंकार रूप मानकर प्राण में हिंकार भावना से उपासना करे। दूसरे प्राण का नाम अपान है, यह वाणी में रहता है, प्राण से वाणी श्रेष्ठ है, क्योंकि प्राण द्वारा तो केवल गन्ध का ही बोध होता है, किन्तु वाणी सभी प्रकार के भावों को व्यक्त करने में समर्थ है, आँखों ने चाहे उन पदार्थों को देखा हो, या न देखा हो। कानों ने जिसको सुना ही हो, जिह्वा ने उसका स्वाद लिया हो या न लिया हो, त्वचा ने उसे स्पर्श किया हो या न किया हो, वाणी सभी विषयों को केवल सुनकर अनुमान किये तथा प्रत्यक्ष देखे सभी विषयों का कथन कर सकती है इससे सिद्ध हुआ वाणी घ्राणेन्द्रिय से उत्कृष्ट है श्रेष्ठ है। अतः वाणी प्रस्ताव मानकर प्रस्ताव भावना से उसकी उपासना करनी चाहिये। अब रही उदान की बात सो यह चक्षु में रहता है। चक्षु इन्द्रिय वाणी से श्रेष्ठ है, क्योंकि चक्षु देखकर वाणी को

जो बतावेगी वही वाणी बोलेगी। वाणी तो केवल चक्षु श्रोत्र द्वारा देखी सुनी बातों को ही व्यक्त कर सकती है, किन्तु नेत्र तो स्वाधीन हैं, वे सब कुछ देखने मे समर्थ हैं। अतः चक्षु को उद्‌गीथ मानकर उसमें उद्‌गीथ भावना से उपासना करनी चाहिये।

चक्षु सभी वस्तुओं को देख तो सकती हैं, किन्तु इनमें एक ही त्रुटि है ये नाक के बराबर हैं अतः नाक की सीध की वस्तुओं को–अर्थात् सामने की वस्तुओं को–ही देख सकती है। दायें बायें पीठ पीछे क्या है इसे तब तक नहीं देख सकती, जब तक मुड़े नहीं, उसे सम्मुख न कर ले। कानों मे यह बात नहीं है। आप चाहे सामने से बोलिये, अथवा दायें बायें तथा पीठ पीछे से बोलें, दूर से बोलें, समीप से बोलें, प्रत्यक्ष बोलें, छिपकर बोलें, आड़ से बोलें कान सभी प्रकार के सभी ओर के शब्दों को श्रवण करने मे समर्थ हैं अतः चक्षु की अपेक्षा श्रोत्र श्रेष्ठ हैं अतः श्रोत्र को प्रतिहार मानकर उनमे प्रतिहार भावना से उपासना करनी चाहिये।

घ्राण, वाणी, चक्षु और श्रोत्र तथा अन्यान्य समस्त इन्द्रियाँ मन के ही अधीन हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ मन की सहायता के बिना ज्ञान नहीं कर सकतीं कर्मेन्द्रियाँ मन की प्रेरणा के बिना कोई भी कर्म नहीं कर सकती। मन समस्त इन्द्रियों का प्रेरक है–संचालक है समस्त इन्द्रियों मे व्यान के समान व्यापक है अतः इसे व्यान मानकर इसमें निधन भाव से उपासना करे। इस प्रकार ये उपासनायें एक दूसरी से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं।

जो इस रहस्य को भली प्रकार जानकर इसे हृदयङ्गम करके प्राणों में पाँच प्रकार की परोवरीय–अर्थात् उत्तरोत्तर एक दूसरे उत्कृष्ट भावना से–क्रम-क्रम से गुण विशिष्ट भावना से–उपा–

सना करता है, वह उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होता जाता है। अर्थात् वह उपासना के प्रभाव से उत्कृष्ट जीवन वाला होता हुआ उत्तरोत्तर एक दूसरे से श्रेष्ठ लोकों के भोगों का उपभोग करता हुआ आगे ही बढ़ता जाता है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! पचविध सामोपासना से सम्बन्ध रखने वाली ये कुछ पाँच प्रकार की उपासनायें तो मैंने आपके सम्मुख कह दी अब आगे साम की सप्तविध उपासनायें कही जायँगी। जो इन पचविध उपासनाओं में निष्णात हो जायगा, जिन उपासकों की बुद्धि इन पीछे कही हुई उपासनाओं में समाहित हो जायगी, वे ही आगे चल के आगे कही हुई सप्तविध समोपासना को भी धारण करने में समर्थ हो सकेंगे। अतः अब पचविध उपासना के प्रकरण को समाप्त करके आगे (१) हिंकार, (२) प्रस्ताव, (३) आकार, (४) उद्गीथ, (५) प्रतिहार, (६) उपद्रव और (७) निधन इस प्रकार सप्त प्रकार की सामोपासना का वर्णन किया जायगा। आशा है आप इस विषय को समाहित चित्त से श्रवण करने की कृपा करेंगे।।"

छप्पय

साम पचविध प्राण उपासन जे नर करिहैं।
क्रम-क्रम करि उत्कृष्ट लोक उत्तम तम परिहैं॥
उत्तर-उत्तर होइ श्रेष्ठ जीवन हू तिनिको।
यश लोकनि में व्याप्त होइ निरमल वर उनिको॥
ब्रह्मलोक तक लोक सब, जीति लेइँ बहु सुख लहैं।
करी निरूपन पंचविध, वर उपासना मुनि कहैं॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय का
सप्तम खण्ड समाप्त

वाणी सम्बन्धिनी सप्तविध प्राणोपासना

[११६]

अथ सप्तविधस्य वाचि सप्तविधँ सामोपासीत यत्किंच वाचो हुमिति स हिंकारो यत्प्रेति स प्रस्तावो यदेति स आदिः ॥१॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० ८ खं० १ मं०)

छप्पय

वाणी विषयक सात भाँति की सुनहु उपासन।
'हु' स्वरूप हिकार 'प्र' ही प्रस्ताव निरूपन॥
'आ' ऐसो जो रूप 'आदि' ओंकार कहावै।
जो 'उत्' शब्द स्वरूप ताहि उद्गीथ बतावै॥
'प्रति' प्रतिहार कहावते, कह्यो उपद्रव 'उप' हि कूँ।
'नी' ऐसो जो रूप है, निधन बतावें ताहि कूँ॥

अब तक हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन इस प्रकार विभिन्न पदार्थों मे सामवेद की पाँच प्रकार की उपासना कही गयी। ये पाँचो सामवेद के अवयव हैं, अर्थात् सामवेद के कुछ इने गिने स्तोत्र मात्र हैं। अब ओंकार और उपद्रव मिलाकर

---

* तदनन्तर सात भाँति की वाणी मे सामोपासना करनी चाहिये। वाणी बोलने में जो हुं का प्रयोग करते हैं वह मानो हिंकार है। 'प्र' का प्रयोग प्रस्ताव है 'आ' ऐसा स्वरूप है वह आदि ओंकार है।

समस्त साम की साधुभाव से की जाने वाली सात प्रकार की उपासना का प्रकरण आरम्भ किया जाता है। इस प्रकार १. हिंकार, २. प्रस्ताव, ३. आदि ओंकार, ४. उद्गीथ, ५. प्रतिहार, ६. उपद्रव और ७. निधन ये ही सात प्रकार हैं। ओंकार तो समस्त वेदों का बीज सबसे प्रथम प्रकट आदि अक्षर कहलाता है। उपद्रव से यहाँ उत्पात या रोगों के उपद्रव यह नहीं समझना चाहिये। इस नाम से सामवेद का एक भाग है, यही यहाँ उपद्रव का रूढ़ि अर्थ है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अवयव रूप में जो अब तक सामवेद की पचविध उपासनायें बतायीं, उस प्रकरण को समाप्त करके अब समस्त सामवेद की साधुभाव से की जाने वाली सप्तविध उपासना को आरम्भ करते हैं। बातचीत करते समय जो 'हु' ऐसा शब्द बोला करते हैं न? जैसे दक्षिण दिशा में एक राजा रहता था, तो दूसरा हूँकारी भरते हुए कहेगा—तो जो यह 'हु' है इसे ही हिंकार मानकर हिंकार भावना से उपासना करनी चाहिये। यह तो एक प्रकार की उपासना हुई।

अब दूसरी प्रकार की उपासना बताते हैं। वाणी बोलते समय जो 'प्र' इस उपसर्ग का प्रयोग करते हैं। यह 'प्र' ही मानों प्रस्ताव है अतः प्र में प्रस्ताव की भावना रखकर उपासना करनी चाहिये। यह दूसरी प्रकार की उपासना हुई।

अब तीसरे प्रकार की उपासना को बताते हैं। बातचीत में जो हम 'आ' ऐसा प्रयोग करते हैं। वह 'आ' शब्द रूप ही मानों आदि ओंकार है, क्योंकि सृष्टि के आदि में सर्वप्रथम ॐ यही एक शब्द प्रयुक्त हुआ था। इसीलिये ओंकार ही 'आदि' इस नाम से कहा जाता है। ओंकार के आदि में भी 'आ' है और आदि के आदि में भी आ है अतः आकार में ओंकार की भावना

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! इस वाणी विषयक सप्तविध सामोपासना का फल क्या है ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन् ! जो इस साम की वाणी विषयक सप्तविध उपासना करता है, उसकी वाणी कामदुधा हो जाती है। अर्थात् वाणी का जो भी सार तत्त्व है वह उसे प्राप्त हो जाता है। ऋग्वेदादि शब्द से जो साध्य फल है वह उसे प्राप्त हो जाता है। उस फल को वाणी स्वयं ही दुहती है। अर्थात् उसकी वाणी फलवती होती है। उसकी वाणी से जो भी शब्द निकल जाय, वह सत्य ही होता है। उसके यहाँ अन्न की कमी नहीं रहती, वह प्रचुर अन्न वाला होता है। उसके यहाँ सदा बहुत से लोग भोजन करते रहते हैं। बहुत से लोग ऐसे होते हैं, जिनके यहाँ अन्न तो बहुत भरा रहता है। बहुत से मनुष्य उनके यहाँ भोजन भी करते हैं, किन्तु वे स्वयं कुछ खा नहीं सकते। उनकी जठराग्नि उद्दीप्त नहीं रहती। उन्हें मन्दाग्नि हो जाती है। खाए हुए को पचा नहीं सकते। खुलकर कभी शुद्ध भूख ही नहीं लगती है। किन्तु इस वाणी विषयक सप्तविध सामोपासक साधक के यहाँ अन्न तो प्रचुर मात्रा में रहता ही है वह अन्न का भोक्ता भी होता है। उसकी जठराग्नि उद्दीप्त रहती है, जो वह खाता है उसको पचाने की भी उसमें सामर्थ्य होती है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! यह मैंने वाणी सम्बन्धिनी सप्तविध सामोपासना आपसे कही। अब आप आदित्य सम्बन्धिनी साम की सात प्रकार की सामोपासना को और श्रवण कीजिए।"

छप्पय

वाणी विषयक सात भाँति की प्राण उपासन।
जो जाने जिहि पुरुष देहि दानी तिहि सब धन॥
वाणी को जो दोह वेद को शब्द साध्य है।
वाणी ताकूँ दुहे होइ वह अन्नवान है॥
प्रचुर अन्न तिहि ढिंग रहै, दीप्ति होहि जठराग्नि अति।
जो खावै पचि जाइ सब, भोक्ता बनि पावै सुगति॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय मे
अष्टम खण्ड समाप्त

सात प्रकार की आदित्य दृष्टि से सामोपासना

(११७)

अथ खल्वमुमादित्य ँ सप्तविध ँ सामोपासीत सर्वदा समस्तेन साम मां प्रति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम ॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० ६ ख० १ मं०)

छप्पय

अब आगे आदित्य उपासन सप्त बतावें।
आदित्य हु सम नित्य साम तातें कहलावें॥
मम प्रति मम प्रति कहें साम संज्ञा उनि कहि है।
उदय पूर्व 'हिंकार' भूत अनुगत सब तिनि है॥
पशु अनुगत हिंकार पशु-करें साम हिंकार वर।
उदित सूर्य 'प्रस्ताव' अनु-गत इस्तुति प्रिय होहिं नर॥

जिस प्रकार पीछे (१) हिंकार, (२ प्रस्ताव, (३) आदि ओंकार, (४) उद्‌गीथ, (५) प्रतिहार, (६) उपद्रव और (७)

---

* तदनन्तर आदित्य दृष्टि से सप्तविध साम की उपासना करनी चाहिये। ये सूर्य सर्वदा सम हैं, इसीलिये इनकी भी साम संज्ञा है। सब कहते हैं मेरे प्रति हैं मेरे प्रति हैं। सब सूर्य को अपने ही सम्मुख मानते हैं इसलिये उनका सबके प्रति सम भाव है। इसी समता के हेतु से वे साम हैं।

निधन सात प्रकार की वाणी मे सामोपासना बतायी है, उसमें तो ऋत्वङ्गो के आदि अक्षर या उपसर्गों से समानता करके उन उनमें भावना करने को बताया गया। जैसे क्रम से हुँ, प्र, आ, उत्, प्रति, उप और नि मे इन सातों ऋत्वङ्गो की भावना करे। आदित्य दृष्टि सेजो सदा विध उपासना बतायी जायगी उसमे हिंकार, प्रस्ताव, आदि, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन इनके साथ सूर्यकाल की समानता सिद्ध करके उनके अनुगत प्राणियों को उन उन ऋत्वङ्गों का भागीदार बताया है। जेसे (१) हिंकार, (२) प्रस्ताव, (३) आदि ओंकार, (४) उद्गीथ, (५) प्रतिहार, (६) उपद्रव और (७) निधन इनके साथ (१) सूर्योदय से पूर्व काल, (२) सूय का सर्वप्रथम उदयकाल, (३) सूर्योदय के तीन मुहूर्त पश्चात् सग व वेला, (४) मध्याह्नकाल, (५) अपराह्न के पूर्व का काल, (६) अपराह्न के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व का काल और (७) सूर्यास्त के समय का काल इन कालों से तथा इन कालों के अनुगत प्राणी जैसे (१) पशु, (२) मनुष्य, (३) पक्षी, (४) देवता, (५) गर्भगत जीव, (६) वन्य पशु और (७) पितृगण इनको सात ऋत्वङ्गों की भक्ति के पात्र बताकर सप्तविध की उपासना का विधान बताया है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इसी छान्दोग्य उपनिषद् के प्रथम अध्याय के तृतीय खण्ड में जहाँ उद्गीथ सम्बन्धी उपासनाओं का वर्णन किया गया है, वहाँ पर आदित्य दृष्टि से उद्गीथ की उपासना बतायी है तथा द्वितीय अध्याय के द्वितीय खण्ड से सप्तम खण्ड तक जो साम की पञ्चविध उपासनायें बतायीं गयीं हैं उसी प्रसङ्ग में जो द्वितीय खण्ड में लोक विषयक पाँच प्रकार की उपासना बतायी है, उसमे भी आदित्य लोक को प्रतिहार मानकर उसकी उपासना का उल्लेख आया है। इन दोनों

ही स्थानों में जो आदित्य सम्बन्धिनी उपासनायें हैं, वे सामवेद के अवयव मात्र में आदित्य दृष्टि का उल्लेख है। अर्थात् सामवेद के उद्गाता, प्रतिहर्ता तथा प्रस्तोता आदि ऋत्विजों द्वारा गाये जाने वाले कुछ स्तोत्रों के ही साथ उनकी समता की गयी है। अब यहाँ इस सप्तविध आदित्योपासना में आदित्य को समस्त सामवेद में उसके अवयवों के विभागानुसार आरोपित करके उपासना बतायी जायगी। पिछले प्रकरणों में तो साम के अवयव भूत कत्वङ्गों के साथ जैसे-उद्गीथ के साथ, प्रतिहार के साथ आदित्य की समता की गयी थी। अब समस्त सामवेद के साथ आदित्य की समता करते हैं।

" सामवेद का नाम साम क्यों हैं, इसलिये कि वह सर्वप्रिय है। इसके गायन को सुनकर दुःख दूर हो जाता है। सभी लोग इससे सुखी होते हैं, सभी इसे अपनाते हैं, अपना मानते हैं। जो सर्वप्रिय होता है उसे सभी लोग यही कहते हैं-वे मुझसे ही सबसे अधिक स्नेह रखते हैं, मेरे ही सम्मुख रहते हैं, मेरे ही अभिमुख रहते हैं। वही बात आदित्य में भी है। जो सबके प्रति समभाव रखे वही साम कहलाता है। आदित्य सभी के लिये सर्वदा सम हैं इसलिये सामवेद के सदृश वे भी साम हैं। सूर्य के लिये सभी लोग यही कहते कि सूर्य मेरे ही सम्मुख हैं। सभी को वे अपने अभिमुख प्रतीत होते हैं। सभी उन्हें समभाव से अपने ही सम्मुख मानते हैं। वे चन्द्रमा की भाँति क्षय तथा वृद्धिशील भी नहीं हैं। वे तो सदा सर्वदा समभाव से रहते हैं। इसलिये साम हैं। इस प्रकार सामवेद की ओर सूर्यनारायण-आदित्य की समानता है। दोनों ही साम स्वरूप हैं। उन सूर्य में समस्त प्राणी अनुगत हैं, अतः सात प्रकार के प्राणियों के साथ आदित्य के सात कालों की तथा साम के सात अवयवों की समता है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! हमने शास्त्रों में चार ही प्रकार के प्राणी सुने हैं। एक तो अंडे से उत्पन्न होने वाले अडज प्राणी जैसे उड़ने वाले पत्ती, जल में रहने वाले नक्र, मछली, कछुए, शङ्ख आदि, स्थल में रहने वाले गिरगिट–कृकलास–सर्प आदि ये सब माता के पेट से अंडे के रूप में पैदा होते हैं, बाहर आकर अंडा पककर जब फूट जाता है, तब उस अंडे में से वह जीव निकलता है। अंडे से पैदा होने से ये समस्त प्राणी अंडज कहलाते हैं।

दूसरे प्राणी है, पिंडज अथवा जरायुज। जरा झिल्ली या जेर को कहते हैं। जो प्राणी झिल्ली से लिपटा–जेर से बँधा हुआ पैदा हो वह जरायुज, पिंडज अथवा जारुज कहलाते हैं–जैसे गाय भैंस आदि पशु, हिरण आदि मृग जाति वाले, ऊपर नीचे दाँव वाले व्याल, राक्षस, पिशाच और मनुष्य ये सबके सब प्राणी जरायुज वर्ग में माने जाते हैं।

तीसरे प्राणी हैं, स्वेदज–जो स्वेद–पसीना–से उत्पन्न हो जावे हैं, जैसे डांस, मच्छर, जोंक, मक्खी, खटमल, जूँआ आदि।

चौथे प्राणी हैं उद्भिज। जो पृथ्वी को फोड़कर भूमि से ही पैदा होते हैं, जैसे वृक्ष, लता, गुल्मादि। इनके भी दो प्रकार होते हैं एक तो बीज से उत्पन्न होने वाले जैसे आम, जामुन, कटहल, बबूर आदि। दूसरे वे हैं जो डाली अथवा पत्ते से उत्पन्न होने वाले जैसे पाटल–गुलाब–लतायें आदि-आदि।

इन चारों के अतिरिक्त पाँचवें प्रकार के प्राणी नहीं होते, आप ने सात प्रकार के प्राणी कैसे बताये ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! आपका कथन सर्वथा सत्य है। पृथ्वी के प्राणी चार ही प्रकार के होते हैं। यहाँ उद्भिजों–वृक्षों आदि और स्वेदजों को छोड़ दिया है। जरायुजों के तीन भेद कर दिये हैं (१) मनुष्य, (२) गाम्य पशु, और वन्य पशु, अडजों

में पक्षियों को लिया है इस प्रकार चार हो गये। गर्भस्थ बालक को उन्होंने पृथक किया है, वह चाहे गर्भ में रहने वाला अंडज हो चाहे जरायुज। इस प्रकार पाँच हुए। देवता और पितर ये दो पृथ्वी के प्राणी नहीं दूसरे पुण्य लोकों के प्राणी हैं। इस प्रकार यहाँ सात प्रकार के प्राणियों को आदित्य के सात कालों के अनुगत बताया है और उनकी साम के सात अवयवों से समता की है।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, कैसे की है, इसे बताइये ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! आदित्य में ये सम्पूर्ण प्राणी अनुगत हैं। अतः सात प्रकार के गेय सामवेद में आदित्य दृष्टि करके उपासना करनी चाहिये। सामवेद के वे सात गेय अवयव (१) हिंकार, (२) प्रस्ताव, (३) ओंकार, (४) उद्गीथ, (५) प्रतिहार, (६) उपद्रव और (७) निधन हैं। पहिला अवयव हिंकार है। सूर्योदय से पूर्व जो उषाकाल कहलाता है उसमें हिंकार की भावना करके उपासना करनी चाहिये। उषाकाल में पशु हिंकार करते हैं। हिंकार रूप में पशु अनुगत है। अर्थात् वे हिंकार के अनुष्ठाता हैं।

अब साम का दूसरा अवयव प्रस्ताव है। सूर्य के पहिले-पहल उदय होने पर अर्थात् सूर्य के उदय होने का जो काल है, उसमें प्रस्ताव की भावना करके उपासना करे। यह प्रस्ताव भक्ति है इसके अनुगत मनुष्य होते हैं। इसीलिये मनुष्य प्रस्तुति और प्रशंसा प्रिय होते हैं। प्रस्तुति या स्तुति तो उसे कहते हैं जो मुख के सम्मुख विनती की जाय। संसार में ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसे अपनी स्तुति प्रिय न हो ? (स्तोत्र कस्य न रोचते भुवि नृणाम्) और प्रशंसा उसे कहते हैं जो सम्मुख तथा पीठ पीछे दोनों ही दशाओं में की जाय। मनुष्य अपनी पीठ पीछे भी प्रशंसा

चाहता है। और सम्मुख भी प्रस्तुति सुनकर प्रसन्न होता है। इसलिये कि वह सामरूप आदित्य की द्वितीय भक्ति प्रस्ताव का सेवन करने वाला है। अर्थात् प्रस्ताव का अनुष्ठाता अथवा अनुगामी है।

अब साम का तीसरा अवयव ओंकार है। जिसे प्रणव या आदि शब्द भी कहते हैं। सब के आदि में प्रयोग होने से प्रणव की आदि सज्ञा है। आदित्य की सङ्गव वेला में आदि की भावना करके उपासना करनी चाहिये, सूर्योदय के तीन मुहूर्त पश्चात् के काल को सङ्गव वेला कहा जाता है। उसके उस रूप के अनुगत पक्षिगण हैं अर्थात् वे ओंकार के अनुष्ठाता हैं। तभी तो सूर्योदय के तीन मुहूर्त पश्चात् उष्णता पाकर पक्षिगण अपने-अपने घोसलों में से उड़कर निरावलम्बन होकर आकाश में उड़ने लगते हैं। विना किसी आधार-सहारे के वे अन्तरिक्ष में उड़ान भरते हैं। वे सामके आदि शब्द का-ओंकार का भजन करने वाले हैं।

अब साम का चौथा अवयव है उद्‌गीथ। सूर्य के मध्याह्न काल में उद्‌गीथ की भावना करके उपासना करनी चाहिए क्योंकि वह आदित्य के मध्याह्न काल का रूप है। इसके इस रूप के अनुगत देवतागण हैं। देवता प्रजापति से उत्पन्न सभी प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। मध्याह्न काल देवताओं का काल है। देवतागण इस सामरूप सूर्य की उद्‌गीथ भक्ति द्वारा उपासना करते हैं।

अब साम का पाँचवा अवयव है प्रतिहार। सूर्य के मध्याह्न काल के पश्चात् और अपराह्न के पूर्व का जो काल है, उसमें प्रतिहार की भावना से उपासना करनी चाहिये। उसके अनुगामी भी गर्भस्थ जीव हैं। इसीलिये गर्भस्थ जन्तु ऊपर की ओर आकृष्ट

किये जाने पर नीचे नहीं गिरते प्रतिहृत रहते हैं। गर्भाशय योनि-द्वार के समीप ही रहता है, फिर भी गर्भ माताओं के मलमूत्र त्यागने और बैठने पर नीचे नहीं गिर जाता। क्योंकि सामरूप सूर्य की प्रतिहार भक्ति सेवन करने वाले वे गर्भस्थ प्राणी ही हैं। इसीलिये माताओं के शरीरों को विशेपकर गर्भाशय को अपराह्न के पूर्व के सूर्य की किरणें अत्यन्त ही लाभप्रद होती हैं। उन सूर्य किरणों के प्रभाव से गर्भ भली-भाँति सुरक्षित रहता है।

साम का छठा अवयव है उपद्रव। सूर्य का जो अपराह्न के पश्चात् और सूर्यास्त से पूर्व का जो काल है उसमें उपद्रव भावना रखकर उपासना करनी चाहिये। उसके उस रूप के अनुगामी जंगली पशु हैं। इसी से जगली पशु पुरुप को देखकर उपद्रव के भय से भगकर अपनी गुफा मे या घोर वन मे चले जाते हैं। ये पशु साम की उपद्रव भक्ति के भागी हैं अर्थात् उपद्रव के अनु-ष्ठाता हैं।

सामका सातवाँ अवयव है निधन। सूर्यास्त से तनिक पहिले का जो समय है उसमें निधन भाव रखकर उपासना करनी चाहिये इस रूप के अनुगत पितृगण हैं। पितरों का पूजन मध्याह्न के पश्चात् ही प्रशस्त माना गया है। श्राद्धकाल में उन्हें दिये जाने वाले पिंडों को कुशाओं पर स्थापित करते हैं।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इस प्रकार मैंने दिन के सातों कालो के अनुसार हिंकार, प्रस्ताव, ओंकार, उद्‌गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन इन सात प्रकार के समस्त गेह साम के अवयवों की उपासना तथा उनके अनुगत, गाम्य पशु, मनुष्य, पक्षिगण, देवगण, गर्भस्थ, वन्यपशु और पितरों का अनुष्ठाता रूप में वर्णन किया। अब आगे मृत्यु से अतीत साम की सप्तविध उपासना का वर्णन आपके सम्मुख करूँगा।"

छप्पय

सगव वेला 'आदि' पच्छि अनुगत तिहि नभचर।
मध्यदिवस 'उद्गीथ' सुरहु अनुगत प्राणिनि-वर॥
मध्याह्नोत्तर पूर्व गर्भ अनुगत 'प्रतिहार' हु।
गिरै न प्रतिहत गर्भ भक्ति सो करि प्रतिहार हु॥
सूर्यअस्त तैं पूर्व अनु-गत वन पशु वह 'उपद्रव'।
तनिक पूर्व रवि अस्त अनु-गत पितर हु सो 'निधन' तब॥
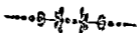
मृत्यु से अतीत सप्तविध सामोपासना

[११८]

अथ खल्वात्मसंमितमति मृत्युसप्तविधँ सामोपासीत ।
हिंकार इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ *

(छां० उ० द्वि० अ० १० खं० १ मं०)

छप्पय

साम उपासन सप्त अतीत हु मृत्यु कहें अब।
हिंकार, हु. प्रस्ताव, आदि, प्रतिहार उपद्रव ॥
निधन, उपद्रव सात सबहिँ बाइस अक्षर हैं।
बारह सबरे मास पाँच ऋतु लोक तीनि हैं ॥
इक्किसवाँ आदित्य है, कह्यो मृत्यु आदित्य ई।
तिन सचे इक्कीस सम, परे मन्त्र बाईस ई ॥

पंचविधि सामोपासना के अनन्तर पहिले वाणी विषयक सप्तविध सामोपासना बतायी। वहाँ तो सातों अवयवों के आदि अक्षरों का वाणी में क्रम रखकर उपासना बतायी। जैसे हिंकार के आदि का अक्षर हिं या हुं, प्रस्ताव का 'प्र' आदि का 'आ'

---

* तदनन्तर मृत्यु से अतीत सप्तविध उपासना कहते हैं। मृत्यु से अतीत समान अक्षरों के आधार से सामोपासना करे। हिंकार में तीन अक्षर हैं, 'प्रस्ताव' में भी तीन ही अक्षर हैं। अतः ये दोनों अक्षर समान हैं।

उद्‌गीथ का 'उत्' प्रतिहार का 'प्रति' उपद्रव का 'उप' और निधन का 'नि' शब्द लेकर इनमें साम के सातों अवयवों की भावना करके उपासना करे।

वाणी विषयक उपासना बताने के अनन्तर जब आदित्य में सात प्रकार की उपासना बतायी, तो वह क्रम दूसरा ही रखा। वहाँ समग्र साम की और सूर्य की सर्वप्रियता से समता करके साम के सात अवयवों के सात आदित्य के सात समयों में भावना करने को बताकर उन अवयवो के सात अनुगत प्राणियों के साथ भी उनकी निष्ठा का निरूपण किया। अब यहाँ जो मृत्यु से अतीत साम की सप्तविध उपासना का वर्णन करेंगे उसमें दूसरा ही क्रम रखा। मृत्यु से अभिप्राय इनका आदित्य से ही है। काल का नाप सूर्य नारायण के ही द्वारा होता है। सूर्य उदय अस्त से होते हुए दिखाई न दें तो दिन रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन तथा सम्वत्सर की गणना किस आधार से हो सकती है। अतः काल के प्रमापयिता आदित्य ही हैं मृत्यु का ही नाम काल है। काल के आने पर ही मृत्यु होती है। जब तक प्राणी आदित्य के अन्तर्गत लोकों में रहेगा, तब तक जन्मता और मरता रहेगा। जब आदित्य लोक को पार कर जायगा, तब मृत्यु के चंगुल से छूट जायगा। वह मृत्यु से अतीत लोकों को प्राप्त करके अमर बन जायगा। अतः यहाँ साम के ऋत्वंग रूप अवयवों के अक्षरों की संख्या के साथ आदित्य लोक के लोकों की समता की है। विशाखा नक्षत्र के अधिष्ठातृ देव जहाँ रहते हैं वह (१) वैशाख लोक, (२) ज्येष्ठा के अधिष्ठातृ देव जहाँ रहे वह ज्येष्ठ लोक, (३) आषाढ़ा के का आषाढ़ लोक, (४) श्रवण के का श्रावण लोक, (५) भाद्रा के का भाद्रपद लोक, (६) अश्विनी का आश्विन लोक, (७) कृत्तिका का कार्तिक लोक, (८) मृगशिरा का

मार्गशीर्ष लोक, (६) पूर्वाषाढा का पौष लोक, (१०) मघा का माघ लोक, (११) फाल्गुनी फागुन लोक और (१२) चित्रा का चैत्रलोक इस प्रकार बारह मासों के बारहलोक तो ये हुए। हम पीछे बता चुके हैं, कि वेद मे ६ ऋतुओं को पॉच ही माना है, उन्होने हेमन्त और शिशिर दोनों को एक ही कर दिया है। इसलिये (१) वसंत, (२) ग्रीष्म, (३) पावस, (४) शरद और (५) हेमन्त (शिशिर भी इसी में) इस प्रकार पॉच ऋतुओ के पॉच लोक। बारह और पॉच सत्रह लोक हुए। (१) पाताललोक, (२) मृत्युलोक और (३) स्वर्गलोक तीन ये हुए। सत्रह और तीन बीस हुए। एक आदित्य लोकआदित्य लोक को इक्कीसवाँ लोक इसीलिये बताया। यहाँ तक मृत्यु का भय है। इन लोकों में विचरण करने वाले प्राणी मरते जन्मते रहेंगे। जो आदित्य लोक को पार कर जायगा। वही मृत्यु से अतीत परे हो जायगा। उसी की उपासना की विधि सामवेद के अनुसार बतायी जाती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आदित्य दृष्टि से सात प्रकार की सामोपासना के अनन्तर अब मृत्यु से अतीत (१) हिंकार, (२) प्रस्ताव, (३) ओंकर, (४) प्रतिहार, (५) उद्गीथ, (६) उपद्रव और (७) निधन सात प्रकार की साधु दृष्टि से समस्त गेय साम की उपासना का वर्णन करते हैं। गेय साम के जो उक्त सात प्रकार हैं, सात अवयव हैं, उन सब मे २२ अक्षर हैं। और आदित्य लोक इक्कीसवाँ लोक है। अतः साम के अवयवों के २१ अक्षरों से तो आदित्य लोक तक की समता करे। शेष जो एक अक्षर है उससे मृत्यु से अतीत लोक की—क्योंकि आदित्य ही मृत्यु है—अतः आदित्य से परे जाना ही मृत्यु से अतीत होना है—अतः मृत्यु से परे जाने की भावना करे। अब सात अवयवों के ३-३ अक्षरों से आदित्य के तीन अक्षरों की—आदित्य तक २१ लोकों की—समता करते हैं।

सामवेद का पहिला अवयव हिंकार है, दूसरा अवयव प्रस्ताव है। हिंकार में हिं का और र तीन अक्षर हैं। इसी प्रकार प्रस्ताव प्र, स्ता और व तीन अक्षर हैं अतः ये तीन-तीन अक्षर समान हैं। ये आदित्य के वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र और आश्विन के समान ६ अक्षरा के हिंकार भक्ति और प्रस्ताव भक्ति के समान समझना चाहिये।

सामवेद का तीसरा अवयव आदि है। इसमें आ और दि दो अक्षर हैं। चौथा अवयव प्रतिहार है। इसमे प्र, ति, हा और र ये चार अक्षर हैं। ये दोनों मिलकर ६ अक्षर हुए। तीन-तीन अक्षर होने से समान अक्षर हो जाते, किन्तु प्रतिहार में र अक्षर अधिक है। 'र' की समता यों मान लो कि 'र' अक्षर को आदि के पहिले जोड़ दो तो इस प्रकार दोनों में तीन-तीन शब्द समान हो जाते हैं। इन ६ अक्षरों की समता कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन और चैत्र इन ६ मासों के साथ की जा सकती है।

अब पाँचवाँ अवयव उद्गीथ है। इसमें उद्, गी और थ ये तीन अक्षर हैं, छठा अवयव उपद्रव है। इसमें उ, प, द्र और व ये चार अक्षर हैं। ये दोनों मिलकर सात आक्षर हुए। तीन-तीन अक्षर होने से ये भी समान हो जाते किन्तु उपद्रव में एक 'व' अक्षर अधिक है 'व' की समता यों मान लो कि 'व' अक्षर है और अक्षर में अ, क्ष और र ये तीन शब्द हैं इन ६ अक्षरों की समता पाँच ऋतुओं के पाँच लोकों के साथ तथा छठें पाताल लोक के साथ की जा सकती है।

सब सातवाँ अवयव निधन है। इसके भी नि, ध और न ये तीन अक्षर हैं। इन तीनों को मर्त्यलोक, स्वर्गलोक और आदित्य लोकों की समानता की जा सकती है। इस प्रकार ३–३ अक्षरों के ये २१ अक्षर हुए। एक अक्षर वढ़ता है। इन इक्कीस

अक्षरों में भावना करके आदित्य लोक तक पहुँच सकता है। क्योंकि आदित्य लोक इकीसवाँ ही लोक है। एक जो बाईसवाँ अक्षर बढ़ता है। वही आदित्यलोक से परे नाकलोक है वह कैसा लोक है, कि जिसमें न मृत्यु का भय है और न किसी प्रकार का शोक ही है। 'क' कहते हैं सुख को। अक कहते हैं दुःख को। जिसमें दुःख न हो केवल सुख ही सुख हो उसका नाम नाक है। (न क=सुखम् =इति अकं=दुखम्) यत्र तन्नास्ति =इति नाकः)।

जो साधक सामवेद की मृत्यु से अतीत इस सप्तविध उपासना को करता है, वह आदित्य लोक से भी ऊपर नाकलोक को जीत लेता है। वह आदित्य लोक से भी बढ़कर लोक विजेता हो जाता है। इस उपासना को करने वाला मृत्यु से अतीत हो जाता है, मृत्यु से अतीत हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने साम की मृत्यु से अतीत सप्तविध उपासना कही। अब आप गायत्र साम की उपासना के सम्बन्ध में श्रवण करें।"

छप्पय

सूर्य लोक इक्कीस तासु पर बाइस है जो।
जहँ न दुःख विषाद शोक तैं रहित नाक सो॥
करै उपासन साम सप्तविध मृत्यु परे नर।
विजय करै आदित्य तासु उत्कृष्ट पाइ वर॥
जा उपासना मर्म कूँ, जानि आत्म सम्मित पुरुष।
मृत्यु विजय करि परम पद, पावै जग में परम यश॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय का
दशम खण्ड समाप्त

गायत्र-सामोपासना

[११६]

मनो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारः
प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम् ॥१॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० ११ खं० १ मं०)

छप्पय

सामवेद दश भेद यज्ञ में हों प्रयुक्त जो।
तिनि सबमें गायत्र कहावै प्रथम भेद सो॥
है प्राणनि में प्रोत मनहिँ हिंकार बतायो।
कह्यो वाक प्रस्ताव चक्षु उद्गीथ जतायो॥
श्रोत्र कह्यो प्रतिहार है, प्राण निधन मुनिवर कहें।
श्रोत प्रोत मन प्राण में, प्राणनि इन्द्रिय सँग रहें॥

पीछे के प्रकरणों में एक प्रकार से बिना ही स्तोत्रों का नाम लिये साम के अवयवों की, साधुभाव से समग्र साम की उपासनाओं का वर्णन है। अब सामवेद के जो यज्ञों में प्रयुक्त भेद हैं, उनका नाम ले-लेकर पंचविध उपासना का वर्णन करेंगे।

---

* मन जो समस्त इन्द्रियों का स्वामी है वही हिंकार है, वाक् कर्मेन्द्रिय प्रस्ताव है। ज्ञानेन्द्रिय चक्षु ही उद्गीथ है। ज्ञानेन्द्रिय श्रोत्र ही प्रतिहार है। सब के सचालक प्राण ही निधन हैं। साम का जो गायत्र भाग है वह मन सहित प्राणों में प्रतिष्ठित है अर्थात् इनके आश्रित है।

यज्ञो मे प्रयुक्त होने वाले साम के (१) गायत्र, (२) रथन्तर, (३) वामदेव्य, (४) बृहत्, (५) वैरूप, (६) वैराज, (७) शक्वरी, (८) रवेती, (९) यज्ञायज्ञिय और (१०) राजन ये दश भेद हैं। *अब आगे क्रमशः इन दशों का नाम लेकर सामोपासना का वर्णन* किया जायगा। इन दशों मे पहिला भेद है गायत्र। सामवेद में एक स्तोत्र का नाम गायत्र है। उसका उद्‌गाता गायन करता है। गाने वाले का जो त्राण–रक्षण करता है अथवा गायत्र स्तोत्र जिसमें उस प्रकरण को गायत्र कहते हैं। (गायन्तं त्रायते–इति= गायत्। अथवा गायत्रं स्तोत्र–अस्य अस्ति–इति=गायत्र) यह गायत्र स्तोत्र प्राणों के साथ ओतप्रोत है। प्राण मन के साथ ओतप्रोत है। मन समस्त इन्द्रियों का स्वामी है। मन की भी इन्द्रिय संज्ञा है। अतः यह प्राणोपासना इन्द्रिय विशिष्ट प्राण की उपासना है। पिछले प्रकरण मे पॉच प्रकार की बहुत सी उपासनायें बतायी हैं उनमे एक पंचविध प्राणोपासना भी बतायी थी वहॉ भी इन्द्रिय विशिष्ट प्राण की ही उपासना थी। उसे परोवरीय गुण विशिष्ट सामोपासना बताया था। उसमें एक से दूसरी दूसरे से तीसरी ऐसे उत्तरोत्तर उत्कृष्टता का उल्लेख था। उसमे *प्राण को हिंकार, वाणी को प्रस्ताव, चक्षु को उद्‌गीथ, श्रोत्र को* प्रतिहार और मन को निधन बताया था। अब उसी को फिर से साम के गायत्र स्तोत्र भाग का नाम लेकर अन्य प्रकार से विशिष्ट फलवती बताकर उसका वर्णन करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यज्ञो मे जो सामवेद की गाने वाली ऋचायें प्रयुक्त होती हैं उनके छन्दो के नाम से दश भेद बताये हैं। उन दशों के साथ हिंकार, प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार और निधन इन कल्वङ्गों के साथ कैसे उपासना करे, इसी को बताते हैं। पहिला भेद है गायत्र। इस स्तोत्र मे गायत्री का

प्राण रूप में स्तवन किया गया है। प्राण को ही गायत्री मानकर उसकी स्तुति की गयी है, इसलिये यह गायत्र संज्ञक साम का भाग प्राणा में प्रतिष्ठित है। अतः इन्द्रिय विशिष्ट प्राणों को किस किसमें हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन भावना करके उपासना करनी चाहिये। कर्मेन्द्रियों में मुख्य वाणी है। ज्ञानेन्द्रियों में मुख्य कर्ण और चक्षु हैं। मन समस्त इन्द्रियों का स्वामी ही ठहरा। अतः मन, वाणी, चक्षु और श्रोत्र से विशिष्ट जो प्राण हैं उनमें किन-किन की भावना करे।

सर्वप्रथम तो मन है, क्योंकि वह समस्त इन्द्रियों का स्वामी है। उसकी इच्छा बिना, उसके सहयोग—आज्ञा के बिना—कोई इन्द्रिय अपने कार्य को सुचारु रूप से सम्पादन नहीं कर सकती। अतः मन में हिंकार की भावना करके उपासना करे। अब कर्मेन्द्रियों में सर्वश्रेष्ठ इन्द्रिय है वाणी। वाणी ही हृद्गत भावों को व्यक्त करने में समर्थ होती है, अतः उस वाणी में प्रस्ताव की भावना करे। क्योंकि प्रस्ताव वाणी द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। ज्ञानेन्द्रियों में चक्षु सबसे श्रेष्ठ है। देखकर ही संसारी वस्तुओं का ज्ञान होता है, यदि दृष्टि नहीं तो सृष्टि न होने के समान है, अतः चक्षु में उद्गीथ की भावना करे। चक्षु के पश्चात् कर्णेन्द्रिय ही इतनी महत्वपूर्ण है, कि इसके द्वारा ऊपर नीचे, दायें बायें सम्मुख पीठ पीछे के शब्द सुनकर ज्ञान होता है, इसलिये उस श्रोत्रेन्द्रिय में प्रतिहार की भावना करे। क्योंकि शब्दों को श्रोत्र ही पकड़ता है। अब ये सब मन-सहित कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ गायत्र संज्ञक प्राणों में ही प्रतिष्ठित हैं, अतः प्राण में निधन की भावना करके उपासना करे। इस प्रकार यह गायत्र अर्थात् प्राणों का रक्षक—प्राणों में ओतप्रोत प्रतिष्ठित स्तोत्र है। इस साम गायत्र के द्वारा जो उपासना करता है। जो गायत्र.

संज्ञक साम को प्राणों में ओतप्रोत–परस्पर सम्बन्धित–मानकर उसी भावना से उपासना करता है, वह प्राणवान् होता है अर्थात् उसकी कभी अकाल मृत्यु नहीं होती। वह अपनी पूर्ण आयु–शतायु का सुखपूर्वक उपभोग करता है। उसका जीवन ज्योक-प्रशस्त–रोग आदि से रहित–उज्ज्वल होता है। उसके बहुत सन्तानें तथा बहुत से पशु होते हैं। वह सन्तानों तथा पशुओं की बहुलता के कारण महान् होता है। उसकी चारों ओर कीर्ति फैल जाती है। वह अपनी उज्ज्वल निर्मल कीर्ति के कारण भी महान् होता है। परन्तु वह उपासना व्रतपूर्वक करे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! व्रत क्या ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! कोई भी अनुष्ठान हो, जब तक पूर्ण निष्ठा से एक नियम को वरण करके न किया जाय, तब तक वह अनुष्ठान सफल नहीं होता। पुण्य को उत्पन्न करने वाले जो कृच्छ्र चान्द्रायणादि उपवास हैं वे भी व्रत हैं और किसी बात को प्रतिज्ञा पूर्वक–नियम सयमपूर्वक–करना वही व्रत कहलाता है। जैसे कोई मन्त्र जप का अनुष्ठान कर रहा हो, तो उसे नियम कर लेना चाहिये जब तक जप पूर्ण न हो जायगा तब तक बोलूँगा नहीं, मौन होकर जप करूँगा। तो वह मन्त्र जप तो अनुष्ठान या यज्ञ है और मौन रहना व्रत है। इसी प्रकार साम की जो यह गायत्र उपासना है, इसे जो व्रतपूर्वक करेगा वही पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर सकेगा।"

शौनकजी ने पूछा—"कौन–सा व्रत लेकर इस गायत्र सामोपासना को करे ?"

सूतजी ने कहा—"इस उपासना के उपासक को महामना होना चाहिये। क्षुद्र हृदय वाले साधक इस उपासना को कर भी नहीं सकते और करें भी तो उन्हे सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती।"

शौनकजी ने पूछा—"महामना का भाव क्या है ?"

सूतजी ने कहा—"जिसका मन प्रशस्त हो उसे मनस्वी कहते हैं। अर्थात् जिसके मन में क्षुद्र भाव न होकर उदार भाव हो। महान् मन वाला (महत्=प्रशस्त मनो यस्य सः महामना) उदार हृदय वाला। जो क्षुद्र हृदयी इस उपासना को करेगा, वह सफल कैसे हो सकेगा ? अतः इस उपासना के उपासक को यह व्रत नियम ले लेना चाहिये कि चाहे जैसा भी समय आ जाय, मैं अपने हृदय में कभी भी क्षुद्रता को न आने दूँगा। अपने हृदय को सदा सर्वदा विशाल बनाकर—महान् बनाकर—ही इस उपासना में प्रवृत्त हूँगा। जो ऐसा व्रत लेकर ऐसा नियम संयम लेकर—ऐसी प्रतिज्ञा करके इस अनुष्ठान में तत्पर होगा, उसी को सिद्धि प्राप्त होगी। वही प्राणवान् प्रजावान् पशुवान् महान् तथा कीर्तिवान् होगा।

सूतजी कह रहे हैं—मुनियो ! यह मैंने सामवेद के दश भेदों में से पहिले भेद गायत्र साम की उपासना का वर्णन किया। अब जो दूसरा रथन्तर भेद है उसकी उपासना का वर्णन आगे करूँगा।"

छप्पय

प्राण प्रतिष्ठित साम वही गायत्र कहावै।
प्राणवान् सो होइ उपासन करि हरषावै॥
पूर्ण आयु उपभोग करै ढिँग रोग न आवै।
होवैं बहु सन्तान अधिक पशु घर है जावैं॥
कीर्ति होइ जग में विमल, होइ महान प्रधान नर।
महामना व्रत धारिकें, करै तबहिँ पावै सुवर॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में
एकादश खण्ड समाप्त

रथन्तर साम की उपासना

[१२०]

अभिमन्थति स हिंकारो धूमो जायते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार उपशाम्यति तन्निधनँ सँशाम्यति तन्निधनमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतम् ॥*

(छा० उ० द्वि० अ० १२ ख० १ म०)

छप्पय

कहें रथन्तर साम अग्नि में ओत प्रोत जो।
अभिमन्थन हिंकार कह्यो प्रस्ताव धूम जो॥
होइ प्रज्वलित जबहिँ वही उद्गीथ कहावै।
अगार हु प्रतिहार शान्त-सम निधन कहावै॥
होइ सर्वदा शान्त जब, निधन ताहु कूँ ऋषि कहैं।
यही रथन्तर साम है, अनुस्यूत पावक रहैं॥

---

* दोनो अरणियों से अग्नि जब मन्थन की जाती है, उस मन्थन कर्म मे हिंकार की भावना करके उपासना करे। जब धूम उत्पन्न हो जाय, उसमे प्रस्ताव की भावना करे। प्रज्वलित हो जाय उसमें उद्गीथ की, अङ्गारे हो जायँ उसमे प्रतिहार की। जब कुछ शान्त होने लगे तो उसमे निधन की और सर्वथा शान्त हो जाय तो उसमे भी निधन भावना करके उपासना करे।

यज्ञ मे प्रयुक्त होने वाले दश विध साम के नाम कोई तो छन्दपरक हैं, कोई देवपरक और कोई ऋषिपरक हैं। वेद में १. गायत्री, २. उष्णिक, ३. अनुष्टुप, ४. बृहती, ५. पङ्क्ति, ६. त्रिष्टुप, ७. जगती, ८. अतिजगती, ९. शर्करी, १०. अतिशर्करी, ११. अष्टि, १२. अत्यष्टि, १३. धृति, १४. अतिधृति, १५. कृति, १६ प्रकृति, १७. आकृति, १८. विकृति, १९. सस्कृति, २०. अतिकृति और २१ उत्कृति ये इक्कीस छन्द व्यवहृत हैं फिर इन्हीं के अनेक भेद होकर लोक म तथा वेद में असख्यों छन्द प्रचलित हुए हैं। यज्ञो मे गाये जाने वाले साम के जैसे १. गायत्र—तो गायत्री छन्द के नाम से, २. बृहत्—बृहती छन्द से, ३.—शक्वरी—शर्करी छन्द से, प्रसिद्ध है। वामदेव्य वामदेव ऋषि के नाम से और रथन्तर अग्निदेव के नाम से प्रसिद्ध है।

अग्निदेव का नाम रथन्तर इसलिये है, कि यह जो अग्नि रूप रथ है, इसके द्वारा यह यजमान तरता है—ससार सागर से पार होता है। (रथेन तरति यः यजमानः स रथन्तरः) साम की इस दूसरी रथन्तर उपासना का वर्णन करते हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! सामवेद का जो दूसरा भेद रथन्तर है, वह अग्निदेव मे ओतप्रोत है। अर्थात् इस रथन्तर स्तोत्र मे अग्नि की ही उपासना बतायी गयी है। उन्हीं की स्तुति की गयी है।

यज्ञ यागो मे अग्नि ही प्रधान देव हैं। वे समस्त देवताओं के मुख हैं। जसे मुख मे अन्न डालने स समस्त इन्द्रियाँ, समस्त शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग तृप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार अग्नि मे जिस जिस देवता को निमित्त करके जिस देवता के लिये हवि अर्पण की जाती है अग्निदेव उसी-उसी देवता को उस हविर्भाग को पहुँचा देते हैं। उस अग्नि मे १. हिंकार, २. प्रस्ताव, ३. उद्गीथ,

४. प्रतिहार और ५. निधन इनकी किस-किस कर्म द्वारा कैसे उपासना करनी चाहिये इसे बताते हैं।

यज्ञ यागों मे सर्वप्रथम अग्नि उत्पन्न की जाती है। समी–छोंकरा—के वृक्ष में जो पीपल का वृक्ष होता है उसी से अरणी बनायी जाती है। एक नीचे की अरणी होती है और एक ऊपर की। दोनों का मथन करते हैं– संघर्षण करते हैं, तो पहिले उसमें धुँआ उत्पन्न होता है, फिर चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। उन चिनगारियों को रूई मे या नारियल के तृणों मे रखकर उसी से अग्नि जलाते हैं। इस क्रिया को अरुणि मंथन–अग्नि उत्पादन कार्य-कहते हैं। तो जो यह अरणि मंथन कर्म है, इसमे हिंकार की भावना करके उपासना करनी चाहिये।

दोनों अरणियों को मथते-मथते जो पहिले-पहिल धुँआ निकलता है, उस धूम्र निष्कर्षण कर्म मे प्रस्ताव की भावना करके उपासना करनी चाहिये।

धुँआ निकलने के अनंतर जो चिनगारियाँ निकलने लगती हैं, उन चिनगारियो को रुई में लेकर अग्नि प्रज्वलित करके जो समिधाओं में रखकर उन्हे जलाते हैं, उस प्रज्वलन कर्म मे उद्गीथ की भावना करके उपासना करनी चाहिये।

समिधायें जलकर जब अंगारे हो जाते हैं–प्रज्वलित कोयले हो जाते हैं उनमे प्रतिहार की भावना करके उपासना करनी चाहिये।

यज्ञ कार्य समाप्त होने पर जब अग्नि शनैः-शनै शान्त होने लगती है, उसमें से लपटें निकलनी बन्द हो जाती हैं, तो उस शान्त होने की क्रिया में निधन की भावना करनी चाहिये। और जब अग्नि सर्वथा शान्त ही हो जाय तो उसमें भी निधन की

भावना करके उपासना करे। इसी सामवेद की उपासना का नाम रथन्तर उपासना है।

जो इस रथन्तर उपासना के रहस्य को भलीभाँति जानकर उसकी उपासना करता है, जो अग्नि को रथन्तर में ओतप्रोत-अनुस्यूत-मानकर इसी भावना से इसकी उपासना में रत रहता है, वह साधक ब्रह्मतेज से सम्पन्न रहता है। अग्नि का गुण तेज ही है। अग्निदेव अपनी तेजस्विता उसे प्रदान करते हैं। वह यथेष्ट अन्न का भोक्ता होता है, उसके पेट मे रहने वाली जठराग्नि प्रदीप्त रहती है, वह जो खाता है, सब तुरन्त पच जाता है। उसकी अकाल में मृत्यु नहीं होती, वह पूर्ण आयु का उपभोग करता है। उसे किसी प्रकार की व्याधि नहीं होती। वह बहुत सन्तान वाला होता है। उसके यहाँ हाथी,घोड़ा,बैल आदि वाहनों-पयोगी तथा गाय भैंस आदि दुग्धोपयोगी बहुत से पशु होते हैं। उसकी संसार मे विमल कीर्ति होती है। वह सब प्रकार से महान् होता है। इस उपासना को भी व्रतपूर्वक संयमनियम पूर्वक ही करना चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"इस रथन्तर उपासना का व्रत कौन-सा है?"

सूतजी ने कहा—"इस उपासना का व्रत यही है कि अग्नि में आदर बुद्धि रखे। अग्नि की ओर मुख करके अन्न जल का भक्षण न करे और उसकी ओर मुख करके थूके भी नहीं। इस प्रकार मैंने यह दूसरी रथन्तर उपासना कही। अब जैसे वामदेव ऋषि द्वारा कही हुई साम के भेद की जो उपासना है, उसे मैं आगे कहूँगा। यह बड़ी ही रहस्यमय उपासना है और गृहस्थियों के लिये ही है, आशा है आप सब ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी होने पर

भी इस उपासना को केवल समझ लेने की दृष्टि से ही श्रवण करेंगे।"

छप्पय

पुरुष रथन्तर माहिँ अग्नि अनुस्यूत समुझि कें।
करै उपासन अग्नि माहिँ भ शुभावनि भरिकें॥
ब्रह्मतेज सम्पन्न अन्न भोक्ता सो होवै।
जीवन पूर्ण बिताय निरोगी बनि सुख सोवै॥
प्रजावान पशुवान वह, कीर्तिवान होवै सतत।
अग्नि ओर मुख करि नहीं-खावै थूकै यही व्रत॥

साम सम्बन्धी वामदेव्य-उपासना

[१२१]

उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्‌गीथः प्रति स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्‌ वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० १३ ख० १ मं०)

छप्पय

वामदेव्य अब कहें उपासन मिथुन प्रोत जो।
सकेतहिँ हिंकार तोष प्रस्ताव कह्यो सो॥
ताहि कह्यो उद्‌गीथ शयन-सह सम्मति युत है।
पुनि अभिमुख है शयन कह्यो प्रतिहार एक है॥
समय मिथुन है लगै सो, निधन वामदेवहु कह्यो।
क्रिया निवृत ह्वै निधन है, अनुस्यूत मिथुनहि रह्यो॥

शृङ्गारसानन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। गुण गुणज्ञ से सम्बन्धित होने से ही गुण कहलाते हैं। वे ही गुण निर्गुण से

---

* उपमन्त्रण—सकेत—ही हिंकार है। ज्ञपयन—पारस्परिक तोष-प्रस्ताव है। सहशयन उद्‌गीथ है। अभिमुखशयन प्रतिहार है। मिथुन कालयापन निधन है तथा क्रियानिवृत्ति-परिसमाप्ति भी निधन है। यह वामदव्य नामक सामोपसना मिथुन में ओत प्रोत है अर्थात् अनुस्यूत है।

सम्बन्धित हो जायँ, तो दोप बन जाते हैं। वस्तुएँ न अच्छी हैं न बुरी, पात्रभेद से अच्छी बुरो कहलाने लगती है। घृत को अमृत कहा है कब ? जब उसका पात्र शुद्ध हो। सुवर्ण, रजत या मृण्मय पात्र से संसर्गिक हो। वही घृत जब ताम्रपात्र से सम्बन्धित हो जाता है तो विप बन जाता है। एक ही वस्तु पात्रभेद से अनुपात की भिन्नता से भिन्न गुण वाली हो जाती है। शृङ्गार रस है यदि अरसिक मूर्ख विपय लम्पट से उसका सम्बन्ध हो, तो वह नरक में पहुँचाने वाला वासनामय विपय भोग बन जायगा। वही रसज्ञ विज्ञ संयमी सुशिक्षित सुयोग्य पात्र से सम्बन्धित हो जाय, तो वह मुक्ति का सोपान बन जाता है। कामशास्त्र के प्रणेता वात्सायन मुनि ने अन्त मे लिखा है मैंने अखड ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके इस शास्त्र का प्रणयन किया है। मिथुन होना योग है यदि नियम संयम के साथ योगी उसका आचरण करे तब।

शास्त्रों मे मुक्तपुरुपों मे जडभरत शुक तथा वामदेव का नाम विशेप रूप से बार-बार लिया जाता है।* पीछे ऐतेय उपनिपद् में वर्णन आ ही है, चुका, कि गर्भ में निवास करते हुए ही वामदेव ऋपि को यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी थी। इसीलिये गर्भ से बाहर आने के पूर्व ही माता के उदर मे ही इन्होंने कहा था—यह महान् आश्चर्य की बात है, कि मैंने इस गर्भ मे रहते हुए ही

---

* आगामि प्रतिबन्धश्च वामदेवे समीरितः।
एकेन जन्मना क्षीणो भरतस्य त्रिजन्मभिः॥
(पञ्चदशी)

तदनेक जन्मसाध्यं दुर्लभ जन्मिना सदा।
शुको वा वामदेवो वा मुक्त इत्यस्ति संशय॥
(स्कन्द पुराण)

अन्तःकरण और इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवों के बहुत से जन्मों का रहस्य सम्यक् प्रकार से जान लिया। मैं इस रहस्य को भला भाँति समझ गया कि जन्म आत्मा के नहीं हुआ करते, वे तो इन्द्रिय तथा अन्तःकरण से विशिष्ट जीव के होते हैं। जब तक यह रहस्य मैंने जाना नहीं था। जब तक मैं इस रहस्य से अज्ञात था, तब तक मुझे सेकडों लोहे के सदृश कठोर देहरूपी पिन्डों में रहना पड़ा। उन शरीरों में मेरी ऐसी दृढ़ ममता हो गयी थी, कि उनसे छुटकारा पाना अत्यन्त ही दुर्लभ था। अब ज्ञान हो जाने पर मैं बाज पक्षी के सदृश ज्ञान रूपी बल के वेग से उन सब कठिन से कठिन पिंजडों को तोड़ फोड़कर पृथक् हो गया हूँ। उन देह रूपी पिंजडों से अब मेरा अणुमात्र भी सम्बन्ध नहीं। मैं सदा सर्वदा के लिये सभी शरीरों की अहता से परिमुक्त हो गया हूँ।"

ऐसे ज्ञानी ऋषि द्वारा यह सामवेद का वामदेव्य भाग गाया गया है। इस साम के प्रवर्तक ये ऋषि हैं। वामदेव ऋषि का वेदों के मन्त्र भाग, ब्राह्मण भाग, उपनिषद् भाग, आरण्यकों में तथा महाभारत पुराणों में स्थान स्थान पर महान् ज्ञानी जीवन्मुक्त ऋषि के रूप में उल्लेख आता है। ऋषि ने स्थान-स्थान पर स्वयं ही कहा है—मैं मनु भी हुआ, सूर्य हुआ। मैं ही समस्त पदार्थों का मनन करने वाला मनु हूँ, मैं ही जगत् का प्रकाशक सूर्य हूँ, मैं ही कक्षीवान् ऋषि हूँ।

स्थान-स्थान पर वामदेव्य साम की प्रशसा मे वचन उपलब्ध होते हैं। अथर्ववेद मे वेदवाणी रूप एक गो की कल्पना की गयी है। उस गौ का बछड़ा तो इन्द्र को बनाया है। गायत्री छन्द उस गौ को दुहने वाला पात्र दोहनी है। अभ्रमेघ-को उस गो का स्तन-मडल बताया है। साम के जो दश भेद बताये हैं उनमे से वृहत्

साम और रथन्तर साम इनको दो स्तन तथा यज्ञायज्ञिय साम भाग और वामदेव्य को दूसरे दो स्तन बताकर वेदवाणी रूप गो के चार स्तन पूरे किये हैं। उस गो को इन्द्र रूपी बछड़े से पुहना कर देवगण दूध दुहते हैं। उस वेदवाणी रूप गो के चारों स्तनों से चार प्रकार की वस्तुओं को दुहते हैं। पहिला जो रथन्तर साम नाम वाला स्तन है उससे तो समस्त ओषधियों को दुहते हैं। दूसरा जो बृहत् साम नाम का स्तन है, उसमें से विविध भाँति के पावन यज्ञीय अन्नों को दुहते हैं। तीसरा जो वामदेव्य साम नाम का स्तन है उससे जल को दुहते हैं और यज्ञायज्ञिय नाम का जो चौथा स्तन है उससे यज्ञ को दुहते हैं।

यहाँ तक इस वामदेव्य साम की प्रतिष्ठा बढ़ायी है कि वामदेव्य साम को पिता बताया है तथा अन्य सभी सामों को उसका पुत्र कहा है। एक स्थान पर प्रश्न किया है वामदेव्य साम को किस प्रकार गाना चाहिये। इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—जैसे बिल्ली अपने बच्चों को दाँतों से पकड़ती तो अवश्य है, किन्तु इस प्रकार पकड़ती है, कि बच्चों को पता भी नहीं चलता, कि हमें माता के दाँतों का स्पर्श हुआ है या नहीं। अर्थात् उन्हें अत्यन्त धीरे से मृदुता प्रेम के साथ पकड़ती। दूसरी उपमा देते हैं जैसे वायु सर्वत्र तो वेग से बहता है, किन्तु जल के ऊपर शनैः शनैः बहता है। इसी प्रकार वामदेव्य साम का गायन करना चाहिये। इस प्रकार सर्वत्र इस वामदेव्य साम की प्रशंसा है। अब आगे उन्हीं वामदेव्य ऋषि द्वारा साक्षात्कार की हुई वामदेव्य उपासना का वर्णन करते हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! अब सामवेद के तीसरे भेद वामदेव्य उपासना का वर्णन करते हैं। वामदेव स्त्री पुरुष मिथुन में अनुस्यूत है। ओतप्रोत है। अतः मिथुन भाव से

स्वधर्मपत्नी में इसकी उपासना करनी चाहिये। मुनियो! शास्त्र ने कर्म को प्रधानता न देकर भावना को ही प्रधानता दी है। महाभारत में बताया है, तप, अध्ययन वर्णाश्रम धर्म और बलपूर्वक दूसरों से धन छीन लेना ये पाप नहीं है यदि भावना शुद्ध हो तो। यदि अशुद्ध भावना से ये ही तप अध्ययनादि कर्म किये जायें तो पाप है। जैसे भगवान् के भोग के लिये, यज्ञ के लिये अथवा अतिथि सत्कार के लिये भोजन बनाया जाय, तो पुण्यप्रद कर्म है। वही रसोई केवल अपने ही खाने की भावना से बनाई जाय, तो वह पाप है। ऐसी अपने ही निमित्त बनी रसोई को खाना मानो पाप को ही खाना है। इसी प्रकार वामदेव्य उपासना के अनुसार उपासना भावना से–केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये–अपनी ही धर्मपत्नी के साथ मिथुन धर्म का आचरण करना पुण्यप्रद है। वही विषयोपभोग की भावना से किसी भी स्त्री के साथ–चाहे अपनी धर्मपत्नी ही क्यों न हो–वह अपुण्यप्रद-अपराध ही है। अतः यह वामदेव्योपासना अपनी ही धर्मपत्नी के सहयोग से सम्भव है। यही इस उपासना का मुख्य नियम है।

इसमें उपमन्त्रण—नर नारी सम्बन्धी संकेत अथवा ध्यान ही हिंकार है। उस संकेत मे हिंकार भाव से उपासना करनी चाहिये। तदनन्तर जो ज्ञपन करता है–मधुर भाषण, चन्दन, स्रक, माला, वस्त्राभूषणों द्वारा सन्तुष्ट करना। तोषण करना यही मानो प्रस्ताव है। इस सन्तोष प्रदान मे प्रस्ताव भाव रखकर उपासना करनी चाहिये। तदनन्तर उभय सम्मत जो सहशयन है शैया अप्रकत्व है वही 'उद्गीथ' है उसमें उद्गीथ भावना करके उपासना करनी चाहिये। तदनन्तर जो अभिमुख होना है उभयाङ्गों का सम्मिलन है वही मानो प्रतिहार है, उसमें प्रतिहार भावना से उपासना करनी चाहिये। पुनः संगमावस्था मे कालयापन है वही

निधन है उसमें निधन भावना करके उपासना करनी चाहिये। इसके पश्चात् कर्म पार-क्रिया निवृत्ति परिसमाप्ति है उसमें भी निधन भावना ही करके उसकी उपासना करनी चाहिये। यही वामदेव्योपासना है। यह उपासना स्त्री पुरुष के मिथुन धर्म से ओतप्रोत है। अर्थात् इसमें मिथुन धर्म अनुस्यूत है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! जो साधक इस मिथुन धर्म में ओतप्रोत इस वामदेव्य उपासना का अनुष्ठान करता है। वह मिथुनवान् होता है। उसे पूर्ण दाम्पत्य सुख की सम्यक् प्रकार से उपलब्धि होती है। उसे कभी दयिता वियोग जन्य दुःख उपलब्ध नहीं होता।

उसका प्रत्येक धर्म अमोघ होता है-सफल होता है उसके परिणाम स्वरूप उसे सन्तति की उपलब्धि होती है। वह अमोघ-वीर्य होता है उसका वीर्य कभी मोघ नहीं जाता। वह चिरायु होता है सम्पूर्ण आयु का सुख पूर्वक उपभोग करता है। उसका सम्पूर्ण जीवन समुज्वल-रोगादि से रहित-व्याधि शून्य होता है। वह प्रजा द्वारा सतति द्वारा महान् होता है। प्रजावान् होता है। उसके यहाँ उपयोगी पशुओं का बाहुल्य रहता है, वह पशुवान कहलाता है। वह प्रजा और पशुओं के बाहुल्य के कारण महान् माना जाता है। दशों दिशाओं में उसकी विमल कीर्ति भर जाती है, कीर्ति के कारण भी वह महान् होता है। परन्तु इस उपासना को व्रत पूर्वक सयम नियम निष्ठा सहित करनी चाहिए।

शौनकजी ने पूछा—"इस उपासना का व्रत कौन-सा है?"

सूतजी ने कहा—"इसका एक ही व्रत है, पत्नी ग्रहण। किसी का परिहरण न करे। यदि अनेक पत्नी भी हों तो उनका परित्याग न करे। इस व्रत नियम के साथ इस वामदेव्य उपासना को करना चाहिए।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह मैंने तीसरी साम की वामदेव्य उपासना कही, अब आप चौथी वृहत् उपासना के सम्बन्ध मे आगे श्रवण करें।"

छप्पय

वामदेव्य जो साम मिथुन में ओत प्रोत है।
करे उपासन मार्ग वाम यह आदि स्रोत है॥
जो जन जाकूँ जानि करें दाम्पत्यवान वर।
उज्वल जीवन होइ आयु पूरी अति सुखकर॥
प्रजावान पशुवान अरु, होइ विमलवर कीति नित।
काहू कूँ नहिँ परिहरे, वामदेव्य को यही व्रत॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में
तेरहवाँ खण्ड समाप्त

बृहत्साम सम्बन्धिनी उपासना

[१२२]

उद्यन् हिंकार उदितः प्रस्तावो मध्यन्दिन उद्गीथोऽपराह्णः।
प्रतिहारोऽस्त यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम् ॥*

(छा० उ० द्वि० अ० १४ ख० १ म०)

छप्पय

बृहत्साम की सुनो उपासन है चतुर्थ जो।
व्रतपूर्वक तिहि करें सूर्य में ओत प्रोत सो॥
उदित होत 'हिंकार' वही 'प्रस्ताव' उदय जब।
मध्याह्न हि उद्गीथ होइ प्रतिहार सुनो अब॥
मध्याह्नोत्तर काल में, करैं भाव प्रतिहारको।
अस्त होत ही निधन है, करयो विभाजन काल को॥

वेदों में अनेक देवों का वर्णन है। पंडित लोग स्वस्तिवाचन में एक मंत्र का पाठ करते हैं। उसमें अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, आठ वसु, बृहस्पति, इन्द्र और वरुण इन मुख्य मुख्य १५ देवताओं का वर्णन है। कहीं ३३-कहीं ५०, कहीं तीन सहस्र तीन सौ और

---

* सूर्य जब प्रारम्भ में उदय हो ही रहा हो उस काल में हिंकार की भावना करके उपासना करे। जब पूर्ण उदय हो जायँ उस काल में प्रस्ताव की। मध्याह्न काल में उद्गीथ की। अपराह्न में प्रतिहार की और अस्त होते काल में निधन की भावना करे। बृहत्साम आदित्य में ओत-प्रोत है—स्थित है—

कहीं तैंतीस करोड देवता बताये हैं। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी तथा वृक्षादि योनियाँ हैं वैसे देव भी एक योनि है। वे स्वर्ग में निवास करते हैं अजर-अमर होते हैं, उनके शरीर की छाया नहीं पडती, उनके पलक नहीं गिरते, उनके शरीर में कभी पसीना नहीं आता। उनका शरीर मल से रहित होता हैं, उन्हे कभी जरा व्याप्त नहीं होती। सदा सर्वदा सोलह वर्ष के बने रहते हैं। उनके दाढ़ी मूँछ नहीं होती वे हमारी भाँति स्थूल पदार्थों का भक्षण नहीं करते। वे सूँघकर घ्राण मात्र से ही तृप्त हो जाते हैं। वे अमृत का पान करते हैं विमानों में विहार करते हैं। पृथ्वी का पैरों से स्पर्श नहीं करते। वे जितने चाहें उतने रूप बना सकते हैं। यज्ञों में जहाँ-जहाँ देवताओं को हविर्भाग दिया जाता है वे यज्ञ चाहें पृथक् पृथक् करोडों स्थानों मे हो रहे हों, देवगण उतने ही रूपों को रखकर अपना भाग लेने पहुँच जाते हैं। वे शाप वरदान मे भी समर्थ होते हैं, किन्तु उनके शाप वर की सीमा होती है। कर्मकाण्ड में तो ये भाग ग्रहण करने वाले स्वर्ग तक पहुँचाने वाले माने जाते हैं। उपासना काण्ड में इनमें परमात्म बुद्धि करके उपासना की जाती है। और ज्ञान काण्ड में तो ये ब्रह्मरूप ही हैं।

इन सब देवों में चन्द्र, सूर्यदेव और अग्निदेव प्रत्यक्ष देव हैं।' अतः वेदो में सर्वत्र सूर्योपासना तथा अग्नि उपासना की प्रधानता है। समस्त द्विजगण उदय होते सूर्य की, अस्त होते हुए सूर्य की तथा मध्याह्नकाल के सूर्य की वेदमन्त्रों द्वारा परमात्म रूप से उपासना करते हैं, उनका खड़े होकर उपस्थान करते हैं, अर्घ्य देते हैं, तथा ब्रह्म रूप से उनकी स्तुति करते हैं। सूर्य ब्रह्मतेज को प्रदान करने वाले प्रत्यक्षदेव हैं। जिस गायत्री मन्त्र की द्विजातिगण उपासना करते हैं। जो सबसे श्रेष्ठ मन्त्र माना जाता है, उस गायत्री को वेदों की माता कहते हैं। जो द्विजातियों का सर्वस्व है

जिसकी दीक्षा के बिना द्विज, द्विज नहीं कहला सकता। जो गायत्री दूसरा जन्म प्रदान करके द्विजत्व देती है, उस गायत्री के देवता सविता सूर्य ही हैं, उसमे सूर्य के भर्ग से अपनी बुद्धि को विशुद्ध बनाने की प्रार्थना की गयी है। इस प्रकार सूर्य ससार के सर्वश्रेष्ठ देव हैं, वे उपासको के साक्षात् नारायण हैं, इसीलिये उन्हे सूर्यनारायण कहते हैं। वे ज्ञानियो के लिये ज्योति स्वरूप हैं निर्गुण निराकार परब्रह्म हैं उन आदित्य भगवन् की सामवेद मे स्थान-स्थान पर उपासना के विभिन्न प्रकार बताये गये हैं। इसी छान्दोग्य उपनिषद् के प्रथम अध्याय के तृतीय खण्ड मे विभिन्न प्रकार की उद्‌गीथ उपासनायें बतायी गयी हैं, वहाँ आदित्य दृष्टि से उद्‌गीथोपासना बतायी है। फिर सूर्य और प्राण की एकतानता–एकता–समानता–बतायी है। प्राण ही सूर्य हैं। आगे पचम खण्ड में ओंकार, उद्‌गीथ और आदित्य की एकता बतायी है। फिर रश्मि-भेद से आदित्य की व्यस्तोपासना बतायी है। फिर आदित्य के बीच मे जो एक पुरुष है उस पुरुष की नेत्रान्तर्गत पुरुष से एकता बतायी है। फिर द्वितीय अध्याय मे लोक विषयक पाँच प्रकार की उपासना में भी आदित्योपासना है। उसी के नवमखण्ड मे आदित्य विषयिणी सात प्रकार की उपासना बतायी है। अब यहाँ साम भेद के जो दश भेद हैं उसमे बृहद्‌साम सम्बन्धी उपासना है, इसमे आदित्य को ही बृहत् साम मे ओतप्रोत मानकर आदित्य की ही उपासना कही है। आगे भी तृतीय अध्याय मे जो मधुविद्या है उसके पाँच खण्डो मे केवल आदित्य में ही मधु की दृष्टि से उपासना है। इस प्रकार आदित्योपासना का वेदों में अत्यधिक महत्व है। उन सबका विवरण समय-समय पर आगे दिया जायगा। यहाँ तो अब बृहत्साम की आदित्य सम्बन्धी उपासना बतायी जाती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह बृहत्साम सूर्य में अवस्थित है। अतः सूर्य सम्बन्धी कालों में हिंकार, प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार और निधन की भावना करनी चाहिये। इसमें जब पहिले-ही-पहिल सूर्य की आरम्भि किरण फूटती है उस सूर्य के आरम्भिक उदय काल में तो हिंकार की भावना करके उपासना करे। जब सूर्य पूर्ण रूप से उदय हो जायँ उस उदयकाल में उनमें प्रस्ताव को भावना करे। जिस समय दोपहर सूर्य चढ़ जायँ उस मध्याह्न काल में 'उद्‌गीथ' की भावना करे। जब मध्याह्नोत्तर-अपराह्न काल हो जाय तब उसमें प्रतिहार की भावना करे। जब सूर्य अस्त होने लगे तो उस काल मे निधन की भावना करे।"

इस प्रकार जो साधक बृहत्साम को सूर्य में अनुस्यूत–ओत-प्रोत–मानकर उपासना करता है, वह सूर्य की कृपा से तेजस्वी होता है। उसकी जठराग्नि भी तीव्र होती है वह अन्न का उपभोग भली-भाँति कर सकता है। उसे अपच अजीर्ण नहीं होता। उसकी अकाल मृत्यु नहीं होती, वह पूर्ण आयु का भली-भाँति उपभोग करता है, उसका जीवन परम उज्ज्वल होता है। उसके सन्तानें बहुत होती हैं। उसके घर विपुल मात्रा में अनेक उपयोगी पशु रहते हैं। वह महान् से भी महान माना जाता है। उसकी कीर्ति दिग्दिगान्तों में व्याप्त हो जाती है। इस उपासना को भी व्रत पूर्वक करना चाहिये।

शौनकजी ने पूछा—"इस बृहत्सामोपासना का मुख्य व्रत-नियम–संयम क्या है ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन् ! इस उपासना का यही एक व्रत है कि तपते हुए सूर्य की किसी प्रकार से भी कभी भी निन्दा न करे। इस प्रकार यह मैंने बृहत्साम उपासना कही। अब आगे

वैरूप साम की उपासना का वर्णन किया जायगा। आशा है आप दत्तचित्त होकर इसे श्रवण करेंगे।"

छप्पय

बृहत्साम हू रहै सूर्य में नित्य अवस्थित।
भली भाँति तिहि जानि उपासन करै पुरुष नित॥
अति तेजस्वी होइ अन्न को भोक्ता होवै।
उज्ज्वल जीवन तासु शतायू सुख तैं सोवै॥
प्रजावान पशुवान बनि, कीर्तिवान होवै जगत।
तपते सूरज कूँ नहीं-निन्दै याको यही व्रत॥

सामवेद की वैरूप उपासना

[१२३]

अभ्राणि सम्प्लवन्ते स हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम् ॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० १५ खं० १ मं०)

छप्पय

एकत्रित नभ माँहि होइँ घन 'हिंकार' हु सो।
मेघ होइँ उत्पन्न कहावे 'प्रस्ताव' हु सो॥
जब वह बरसन लगे वही 'उद्गीथ' कहावै।
बिजली चमके कड़िक ताहि 'प्रतिहार' जनावै॥
उपसंहार हु वृष्टि को, होइ निधन ताकूँ कहत।
वैरूपहु यह उपासन, ओतप्रोत मेघहिं रहत॥

अब वैरूप उपासना जो सामवेद का पञ्चम भेद है, उसको कहते हैं। विकृत रूप या विविध रूप होने से वैरूप कहलाता है।

---

*नभ में जब अभ्र एकत्रित होते हैं, वही 'हिंकार' है। जब मेघ उत्पन्न हो जाते हैं, वही 'प्रताव' है। जब बरसने लगते हैं वही उद्गीथ है। जब बिजली चमकती है, कड़कती है वही 'प्रतिहार' है। जब वर्षा की समाप्ति होती है उपसंहार होता है—वही निधन है। यह वैरूप उपासना मेघ में अनुस्यूत है। मेघ में ओतप्रोत है, पिरोया हुआ है।

जिसके विविध रूप हो जायँ। यह उपासना पर्जन्य मे प्रतिष्ठित है। पर्जन्य की उपासना ही वैरूप उपासना कहलाती है। पर्जन्य मेघ का नाम है। यह पृषु सेचन धातु से बनता है (पर्षति= सिञ्चति=वृष्टि ददाति-इति पर्जन्यः) मेघ उसे कहते हैं जो गजते हुए वर्षा करते हैं, बिना गर्जन के भा जो वर्षा करत हैं, वे भी मेघ कहलाते हैं। वैसे पर्जन्य कहो, मेघ कहो, अभ्र कहो एक ही बात है। वारिमुच भी मेघ का ही नाम है जो पानी बरसावे। वर्षा होती कैसे है। सूर्यनारायण अपनी किरणो से जल के कणो को-शीकरों को खींच लेते हैं, धुएँ से बादल बनत हैं। वे बादल उन उन जल-कणों को-शीकरों को धारण करते हैं। इसीलिये वे अभ्र कहलाते हैं। (अपो बिभर्ति-इति=अभ्रः) जलकण वायु और धूम्र तीनों मिलकर मेघ बनते हैं। इसीलिये मेघों का नाम धूमयोनि भी है। क्योंकि धूम से ही मेघ बनते हैं। व्योमधूम भी इनका नाम है। तो पहिले ता आकाश मे बिखरे हुए मेघ वायु के द्वारा एकत्रित होते हैं। एकत्रित होकर फिर ये इस स्थिति म हो जात हैं, कि जल को वर्षा दें। जब वे परस्पर म टकरात हैं, तो शब्द करते हैं, गरजत हैं। मेघो के सघर्ष से विद्युत उत्पन्न होती है। वह आकाश में शब्द करती हुई, कड़कती हुई, चमचमाती हुई चमकती है। यथेष्ट वर्षा हो जाती है मेघ जल मुक्त हो जात हैं, रिक्त हो जाते हैं या वायु उन्हें उडाकर दूसरे स्थान पर ल जाता है, तब वर्षा बन्द हो जाती है। आकाश निर्मेघ शुद्ध हो जाता है। यही वर्षा का क्रम है। इसी वर्षा के क्रम म वैरूप उपासना की जाती है। उसी का वर्णन आगे होगा।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! हिंकार प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन रूप में वैरूप उपासना कैसे करना चाहिए, इसका वर्णन करते हुए बताते हैं, कि वैरूप की उपासना वर्षा में करनी

चाहिये क्योंकि सामवेद का जो वैरूप भाग है, वह मेघ में अनुस्यूत है। अर्थात् जैसे माला के दाने सूत्र में पिरोये हुए हैं माला का आधार सूत ही है। सूत को पृथक् कर देने पर उसकी संज्ञा माला नहीं रहती। इसी प्रकार वैराज में मेघ की ही स्तुति है, यह भाग मेघ सम्बन्धी ही है। इसमें वर्षा होने के पूर्व आकाश में सचार करते हुए अभ्र-धूम मिश्रित जल कण वायु द्वारा एकत्रित होते हैं। इनका सम्प्लवन होना है-संचार करके एकत्रित होना है, उसमें हिंकार की भावना करके उपासना करे। जब घन एकत्रित हो जाते हैं तब वे वर्षाभिमुख होकर-बरसने योग्य मेघ का रूप धारण कर लेते हैं। उन मेघों मे प्रस्ताव की भावना करके उपासना करनी चाहिये। जब वे मेघ वर्षा करने लगते हैं तब उनमें उद्गाथ की भावना करके उपासना करनी चाहिये। जब वे वर्षा करते समय गड़गडान-तडतड़ान करते हुए बिजली चमकाते हैं, चमचम करती हुई बिजली चमकती है कडकती है उसमें प्रतिहार की भावना करके उपासना करनी चाहिये। जब वृष्टि का संहार हो जाय, वर्षा बन्द हो जाय, वर्षा करके घन जल शून्य हो जायँ या वायु उन्हें अन्यत्र उड़ा ले जाय, तो उनमें निधन की भावना करके उपासना करनी चाहिये। क्योंकि इस वैरूप्य साम का सम्बन्ध मेघ से ही है।

जो साधक वैरूप उपासना के इस रहस्य को जानकर इन्हीं भावनाओं से वैरूप साम की उपासना करते हैं, और वैरूप साम को मेघ मे अनुस्यूत मानकर तद्रूप से ही भावना करके पूजते हैं उन्हें विरूप और सुरूप दोनों ही प्रकार के पशु प्राप्त होते हैं। विरूप पशु तो जैसे सिंह, व्याघ्र, बिलार, रीछ आदि हैं। उनका अवरोध करना क्या है, अर्थात् उन्हें पालतू बनाकर अपने वश में करके उनसे नाना प्रकार के कार्य करा सकते हैं। सुरूप पशु जैसे

गौ, घोड़े, बेल तथा हाथी आदि हैं उन्हें अपने वश मे करके उनसे दूध का तथा वाहन आदि का कार्य लेत हैं। उसके यहाँ उपयोगी पशुओं की कमी नहीं रहती। उसकी कभी अकाल मृत्यु नहीं होती, अपने पूर्ण शतायु जीवन को सुखपूर्वक व्यतीत करता है उसका जीवन परम उज्वल होता है। वह प्रजावान, पशुवान, कीर्तिवान तथा महान होता है। अर्थात् उसके सन्तानें बहुत होती हैं। उसके घर मे उपयोगी पशुओं की प्रचुरता रहती है। वह अपनी उज्वल कीर्ति ससार में स्थापित कर जाता है। वह सब प्रकार से महान् बन जाता है। इस उपासना को भी व्रतपूर्वक करे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! इस उपासना का व्रत क्या है?"

सूतजी ने कहा—"भगवन! इसका यही व्रत है, कि बरसते हुए मेघ की कभी भी निन्दा न करे। चाहे अधिक वर्षा हो या न्यून। सब में सम बुद्धि ही करके स्थित रहे।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह मैंने वैरूप उपासना का वर्णन किया। अब वेराज साम की उपासना का वर्णन आगे करूँगा।"

छप्पय

ओत प्रोत पर्जन्य माहिँ वैरूप उपासन।
जानि रहस अरु भेद करै जो जाकूँ प्रतिदिन॥
पशु विरूप जो होहिँ सिंह व्याघ्रादिक प्रानी।
होवैं चाहिँ सुरूप गाय वृष सब गुन खानी॥
सबई का अवरोध करि, उज्वल जीवन आयु शत।
प्रजावान पशुवान बनि, घन नहिँ निन्दे यही व्रत॥

इति छान्दोग्य उपनिषद के द्वितीय अध्याय में
पन्द्रहवाँ खण्ड समाप्त।

साम के वैराज भेद की उपासना

[१२४]

वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः।
शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम् ॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० १६ ख०, १ म०)

छप्पय

सुनो विप्र ! वैराज उपासन सामवेद वर।
ओत प्रोत ऋतु माहिँ रहसमय अति ही सुखकर॥
है वसन्त हिंकार गीष्म प्रस्ताव बखानें।
वर्षा ही उद्गीथ शरद प्रतिहार हु जानें॥
निधन कही हेमन्त ऋतु, कहीं पाँच ऋतु वेद महँ।
अब आगे है शक्वरी, साम सतवीं भेद महँ॥

गंगाजी का प्रवाह निरन्तर बहता ही रहता है। गंगाजी में पापों को काटने की पूरी शक्ति है। आप चाहें गोमुख जाकर गंगा जी में स्नान करो चाहे गंगासागर में जाकर शरीर से गंगाजल का स्पर्श होना चाहिये, गंगाजल का स्पर्श होते ही पाप जलने लगते

---

* वसन्त ऋतु ही हिंकार है, ग्रीष्म ऋतु प्रस्ताव है, वर्षा ऋतु उद्गीथ है, उसकी उद्गीथ भाव से उपासना करनी चाहिये। शरद ऋतु को प्रतिहार मानें। हेमन्त ऋतु को निधन जानें। यही वैराज साम उपासना है, यह ऋतुओं में ओतप्रोत है—अनुस्यूत है।

हैं। गंगाजी की धारा में गंगोत्री से गगासागर तक कहीं भी स्नान करो। गगा स्नान का फल प्राप्त हो जायगा। गगाजी की धारा उपलब्ध न भी हो सके, तो जो लोग गंगाजली में गगाजल भर कर ले जाते हैं, उस गगाजल का भी पान, स्पर्श करने से पाप क्षय होते हैं। चाहे गंगाजी की अनन्त अथाह धार हो, अथवा गंगाजली का एक बिन्दु गगा जल हो, दोनों की ही शक्ति समान है। किन्तु पापों का नाश तभी सम्भव है जब तुम गगाजी की शरण में जाओ, उनके समीप जाओ। उनकी जाकर उपासना करो। यदि उनकी शरण में नहीं जाते। उनका दर्शन स्पर्श, तथा पान स्नानादि नहीं करते, तो गगा जी समीप ही बहती रहे, तुम्हें फल प्राप्त नहीं हो सकता।

इसी प्रकार काल अनादि अनन्त है। वह भगवान् का रूप ही है। लव, क्षण, कला, काष्ठा, पल, घड़ी, मुहूर्त प्रहर, दिन, पक्ष, ऋतु, अयन, वर्ष तथा कल्प ये सब काल स्वरूप हैं, काल के विभाग हैं। चाहे लव क्षण हो या ब्रह्मा जी की पूर्णायु का काल सब ही काल कहलायेंगे। काल के किसी भी रूप की उपासना करोगे, उसी के द्वारा परब्रह्म को प्राप्त कर सकते हो, यदि उपासना न करोगे, उनकी शरण मे न जाओगे, प्रपत्ति द्वारा प्रपन्न न होगो, तो काल तो सदा विद्यमान ही रहता है। हम ऐसे समय की मन से कल्पना भी नहीं कर सकते जिसमें काल विद्यमान न रहे सृष्टि का काल, स्थिति का काल, प्रलय का काल, प्रलयान्तर काल, कैसी भी स्थिति हो, काल का अस्तित्व रहेगा ही। किन्तु उस कालरूप की कैसे भी उपासना करोगे तो तुम्हें उपासना का परम फल--परम सुख--मोक्ष--मिल ही जायगा। अब *यहाँ काल के स्वरूप ऋतु की उपासना का वर्णन करते हैं।* यह हम पीछे बता ही चुके हैं, कि वेदवादी ६ऋतुओं के स्थान में पाँच

साम के वैराज भेद की उपासना

[१२४]

वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः।
शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम् ॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० १६ ख० १ मं०)

छप्पय

सुनो विप्र! वैराज उपासन सामवेद वर।
ओत प्रोत ऋतु माहिँ रहसमय अति ही सुखकर॥
है वसन्त हिंकार गीष्म प्रस्ताव बखानें।
वर्षा ही उद्गीथ शरद प्रतिहार हु जानें॥
निधन कही हेमन्त ऋतु, कहीं पाँच ऋतु वेद महँ।
अब आगे है शक्वरी, साम सतवीं भेद महँ॥

गगाजी का प्रवाह निरन्तर बहता ही रहता है। गगाजी में पापों को काटने की पूरी शक्ति है। आप चाहे गोमुख जाकर गगा जी में स्नान करो चाहे गगासागर में जाकर शरीर से गगाजल का स्पर्श होना चाहिये, गगाजल का स्पर्श होते ही पाप जलन लगते

---

* वसन्त ऋतु ही हिंकार है, गीष्म ऋतु प्रस्ताव है वर्षा ऋतु उद्गीथ है, उसकी उद्गीथ भाव से उपासना करनी चाहिये। शरद ऋतु को प्रतिहार माने। हेमन्त ऋतु को निधन जाने। यही वैराज साम उपासना है, यह ऋतुओं में ओतप्रोत है—अनुस्यूत है।

हैं। गगाजी की धारा मे गगोत्री से गगासागर तक कहीं भी स्नान करो। गगा स्नान का फल प्राप्त हो जायगा। गगाजी की धारा उपलब्ध न भी हो सके, तो जो लोग गगाजली में गगाजल भर कर ले जात हैं, उस गगाजल का भी पान, स्पर्श करने से पाप क्षय होत हैं। चाहे गगाजी की अनन्त अथाह धार हो, अथवा गगाजली का एक बिन्दु गगा जल हो, दोनों की ही शक्ति समान है। किन्तु पापा का नाश तभी सम्भव है जब तुम गगाजी की शरण मे जाओ, उनके समीप जाओ। उनकी जाकर उपासना करो। यदि उनकी शरण में नहीं जाते। उनका दर्शन स्पर्श, तथा पान स्नानादि नहीं करते, तो गगा जी समीप ही बहती रहें, तुम्हे फल प्राप्त नहीं हो सकता।

इसी प्रकार काल अनादि अनन्त है। वह भगवान् का रूप ही है। लव, क्षण, कला, काष्ठा, पल, घडी, मुहूर्त प्रहर, दिन, पक्ष, ऋतु, अयन, वर्ष तथा कल्प ये सब काल स्वरूप हैं, काल के विभाग हैं। चाहे लव क्षण हो या ब्रह्मा जी की पूर्णाहु का काल सब ही काल कहलायेंगे। काल के किसी भी रूप की उपासना करोगे, उसी के द्वारा परब्रह्म को प्राप्त कर सकते हो, यदि उपासना न करोगे, उनकी शरण मे न जाओगे, प्रपत्ति द्वारा प्रपन्न न होगी, तो काल तो सदा विद्यमान ही रहता है। हम ऐसे समय की मन से कल्पना भी नहीं कर सकते जिसमे काल विद्यमान न रहे सृष्टि का काल, स्थिति का काल, प्रलय का काल, प्रलयान्तर काल, कैसी भी स्थिति हो, काल का अस्तित्व रहेगा ही। किन्तु उस कालरूप की कैसे भी उपासना करोगे तो तुम्हें उपासना का परम फल–परम सुख–मोक्ष–मिल ही जायगा। अब यहाँ काल के स्वरूप ऋतु की उपासना का वर्णन करते हैं। यह हम पीछे बता ही चुके हैं, कि वेदवादी ६ऋतुओं के स्थान मे पाँच

ही मानते हैं। शिशिर का समावेश वे हेमन्त मे ही कर लेते हैं। अतः हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन इन पाँच कत्वङ्गों की उपासना पाँच ऋतुओं के साथ कैसे करनी चाहिये। इसी बात को बताते हैं।

सूतजी कहते हैं– मुनियो! अब तक गायत्र, रथन्तर, वामदेव्य, बृहत् और वैरूप जो साम के ५ भेद हैं उनकी उपासना बता चुके, अब छटे वैराज की उपासना का वर्णन करते हैं। यह वैराज उपासना ऋतुओ मे ओत प्रोत है। अर्थात् ऋतुओं में कृत्वङ्गों की उपासना ही वैराज उपासना कहलाती है।

सर्वप्रथम ऋतु (चैत्र और वैशाख) वसन्त है। और कृत्वङ्गों मे प्रथम हिंकार है। अतः वसन्त ऋतु में हिंकार की भावना करके उपासना करनी चाहिये। दूसरी ऋतु (ज्येष्ठ और आषाढ़) ग्रीष्म हैं। इधर कृत्वङ्गो में दूसरा प्रस्ताव है, अतः ग्रीष्म मे प्रस्ताव की भावना करके उसी द्वारा उपासना करनी चाहिये। तीसरी ऋतु (श्रावण और भाद्रपद) वर्षा है। तीसरा कृत्वङ्ग उद्गीथ है, अतः वर्षा में उद्गीथ की भावना करके उपासना करनी चाहिये। चौथी ऋतु (कार कार्तिक) शरद है, इधर कृत्वङ्गों मे चौथा प्रतिहार है। अतः शरद् ऋतु में प्रतिहार की भावना करके उपासना करनी चाहिये। पाँचवीं ऋतु हेमन्त (अगहन और पौष तथा माघ और फाल्गुन शिशिर भी इसी हेमन्त में सम्मिलित है) अतः हेमन्त मे निधन की भावना करके उपासना करनी चाहिये। यह वैराज उपासना ऋतुओं मे अनुस्यूत है अर्थात् वैराज उपासना ऋतुओं में ही की जाती है।

जो साधक इस वैराज उपासना को नियम से श्रद्धापूर्वक करते हैं, उनके उपयोगी पशुओं की कमी होती ही नहीं। वे ब्रह्मतेज से देदीप्यमान होकर विशेष शोभा के भाजन बन जाते हैं।

उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती, वे अपनी पूर्णायु का सुख से उपभोग करते हैं, उन्हे किसी प्रकार की शारीरिक व्याधियाँ क्लेश नहीं पहुँचातीं। वे प्रजावान, पशुवान्, कीर्तिवान् तथा धनवान् होते हैं। इस उपासना को भी व्रतपूर्वक करना चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"इस वेराज उपासना का व्रत क्या है ?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! इसका व्रत यही है, कि ऋतुएँ कैसी भी क्यो न हों उनकी निन्दा न करनी चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! वेराज शब्द का अर्थ क्या है? महीन जो कि ऋतुओं मे विराजे वह वराज है। (विशेषेण ऋतुपु राजति=इति=वैराजम्) जो साम की उपासना ऋतुओं मे की जाय उसका नाम वेराज है, तो पहिले जो इसी अध्याय के छठे खण्ड मे ऋतुओं की उपासना कह आये हैं उसमे और इस वेराज उपासना मे अन्तर क्या है ?"

सूतजी ने कहा—ब्रह्मन्! अन्तर तो कुछ नहीं है। वहाँ भी वसत हिंकार, ग्रीष्म प्रस्ताव, वर्षा उद्गीथ, शरद प्रतिहार और हेमन्त को निधन बताकर उन उन में वैसी भावना करके उपासना करने को कहा है वही बात यहाँ भी कही है, किन्तु यहाँ इसकी विशेषकर शोभायमान होकर विराजने से वेराज संज्ञा कर दी है। विशेषता इतनी ही है इस उपासना को व्रतपूर्वक–ऋतुओं की निन्दा न करते हुए करनी चाहिये। अनिन्दित व्रत लेकर–समभाव रखकर विशेष रूप से इसे करे। ऐसा करने से ऋतु उपासना की अपेक्षा इसके फल में भिन्नता हो जायगी। अतः इसी उपासना को व्रतपूर्वक इसमे बताया गया है। यह मैंने आपसे वेराज उपासना का अत्यन्त ही संक्षेप में सार सुना दिया अब आप सातवीं शक्वरी साम की उपासना के सम्बन्ध मे श्रवण कीजिये।"

छप्पय

राजति अतिहिँ विशिष्ट वही वैराज कहावै।
ओत प्रोत ऋतु माहिँ उपासन ऋतु करवावै॥
जो जानत इहि मर्म उपासक तेजवान अति।
आयु पूर्ण करि भोग सदा ताकी उज्वल मति॥
अति महान बलवान बनि, पुत्रवान पशुवान नित।
ऋतुनि नहीं निन्दे कबहुँ, वैराजहिँ को यही व्रत॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में
सोलहवाँ खण्ड समाप्त।

सामवेद की शक्करी–उपासना

(१२५)

पृथिवी हिंकारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोताः ॥❀

(छा० उ० द्वि० अ० १७ ख० १ म०)

छप्पय

सुनो शक्वरी सुखद साम की सरस उपासन ।
है लोकनि अनुस्यूत उपासक कूँ मनभावन ॥
पृथिवी में हिंकार भावना विधिवत करिकें ।
अन्तरिक्ष प्रस्ताव हिये में भावनि भरिकें ॥
स्वर्गलोक उद्गीथ है, दिशा कहीं प्रतिहार है ।
निधन कह्यो पुनि नीरनिधि, यही शक्वरी सार है ॥

सकाम उपासनायें प्रजावान पुरुष ही करते हैं। जिन्होंने गृहस्थाश्रम की दीक्षा ली है, जो सपत्नीक हैं वे ही सकामोपासना के अधिकारी हैं। जिन्होंने गृहस्थाश्रम को स्वीकार न करके दार-ग्रहण नहीं किया है, वे त्रैलोक्य से ऊपर उठ जाते हैं। जो त्रैलोक्य से ऊपर चले गये, उनका प्रायः जन्म नहीं होता, वे मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं।

❀ पृथ्वी हिंकार है, अन्तरिक्ष प्रस्ताव है अर्थात् अन्तरिक्ष में हिंकार की भावना से उपासना करे, द्युलोक उद्गीथ है, दिशायें प्रतिहार हैं तथा समुद्र निधन है। यह शक्वरी साम लोकों में अनुस्यूत है।

जो गृहस्थी हैं, प्रजावान् हैं, वे प्रायः त्रैलोक्य से बाहर नहीं जाते है। वे छोटी, बड़ी योनियों में घूमते रहते हैं, कभी देवता बन जाते हैं, कभी पिपीलिका आदि क्षुद्र जीव। जो सकाम उपासक हैं, भगवान् के किसी रूप की किसी भाव की उपासना करते हैं, वे अपनी भावना के अनुसार फल पाते हैं। समस्त विश्व ब्रह्माण्ड उन परमब्रह्म परमात्मा की ही मूर्ति है, किसी भाव से किसी में भी भावना करके जो सकाम निष्काम उपासना करेगा, उसे अपने भाव के अनुसार वैसा ही फल भी प्राप्त होगा। संसार में चार ही सबसे बड़े सुख माने जाते हैं। एक तो गोधन, गजधन, बाजिधन आदि पशुधन हो, चल सोना चाँदी आदि धन हो, अचल भूमि आदि धन हो। इस प्रकार चल-अचल सम्पत्ति को प्राप्त करना, दूसरे प्रजावान् पुत्रवान होना अर्थात् स्त्री हो भरा पूरा परिवार हो, तीसरे अपने शुभ कर्मों द्वारा कीर्ति हो, चौथे शरीर स्वस्थ हो, उसमें किसी प्रकार के भी रोग न हों। ये ही चार बातें इस लोक में सबसे सुखद वस्तुएँ हैं। जो सकाम उपासक होते हैं वे उपासना द्वारा (१) चल-अचल विपुल मात्रा में सम्पत्ति, बहुत-सी सन्तानें, विमल कीर्ति और नीरोग रहते हुए पूर्ण आयु को प्राप्त करना। मरने पर स्वर्ग प्राप्त हो, पुण्य क्षीण होने पर पुनः इस लोक में जन्म लेना पड़े, तो पवित्र श्रीमानों के यहाँ अथवा योगियों के परिवार में जन्म हो, जिससे पुनः शुभ कर्मों का अनुष्ठान करते हुए स्वर्ग प्राप्त हो सके। सकाम उपासकों की भू, भुव और स्वर्ग इन तीन लोकों के अतिरिक्त अन्य लोकों में प्रायः गति नहीं। अतः जो गृहस्थ हैं, सकाम उपासक हैं तथा पृथ्वी के तथा स्वर्ग के सुखों के इच्छुक हैं, उन्हें लोकों में कुरङ्गों की भावना करके सामवेद की शकरी उपासना करनी चाहिये। वेद की जो २१ छन्दें बतायी हैं, उनमें एक शर्करी छन्द भी है।

उसी छन्द के नाम से इस उपासना का नाम शकरी उपासना है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब सामवेद के दश प्रकार के भेदों में से जो सातवीं शकरी उपासना है, उसका वर्णन करते हैं। यह उपासना लोको में अनुस्यूत है। अर्थात् लोक सम्बन्धी उपासना ही शकरी उपासना कहलाती है। लोक के जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, दिशा और समुद्र ये पॉच अवयव हैं, उनकी हिंकार, प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार और निधन इन कल्पङ्गों की भावना से उपासना करनी चाहिये। उन्हीं को बताते हैं।

पहिला जो पृथ्वी लोक है, उसमें हिंकार की भावना से उपासना करनी चाहिये। दूसरा जो अन्तरिक्ष लोक है, उसमें प्रस्ताव की भावना से उपासना करनी चाहिये। तीसरा जो द्युलोक–स्वर्गलोक–है उसमे उद्‌गीथ की भावना से उपासना करनी चाहिये। चौथी जो दिशायें हैं उनमें प्रतिहार की भावना करके उपासना करनी चाहिये। पाँचवा जो समुद्र है उसमें निधन की भावना करके उपासना करनी चाहिये।

जो इस प्रकार शकरी साम को उपासना करता है, और उसे पृथ्वी आदि लोको में अवस्थित मानकर पूजता है, उस उपासक को उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है, वह लोकवान होता है। उसकी अकाल मृत्यु नहीं होती वह अपनी पूर्णायु का सुखपूर्वक उपभोग करता है। उसका जीवन व्याधियो से निर्मुक्त तथा, परम उज्वल होता है। वह इस लोक मे बहुसतति वाला तथा बहुत से उपयोगी पशुओ का स्वामी होता है। उसके यहाँ गौओ की, घोड़ों और हाथियो की तथा अन्यान्य उपयोगी पशुओं की कमी नहीं रहती, वह प्रजावान पशुवान तथा महान् होता है। उसकी कीर्ति भी दिगदिगन्तों तक व्याप्त रहती है। इस उपासना को व्रतपूर्वक करना चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"शकरी उपासना का व्रत कौन-सा है ?"

सूतजी ने कहा—"इस शकरी उपासना का व्रत यही है कि कभी भूलकर भी पृथ्वी आदि लोकों की निन्दा न करे।"

शौनकजी ने पूछा - "सूतजी ! इसी छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय के द्वितीय खण्ड में जो लोकों में पंचविध उपासना बतायी गयी है, उसमें और इस शकरी उपासना में क्या अन्तर है ?"

सूतजी ने कहा —"भगवन् ! उसमे और इसमें थोड़ा अन्तर है वहाँ तो पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग तथा अग्नि और आदित्य इन पाँचों को माना है। इसमे पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग तथा दिशायें और समुद्र को माना है। वहाँ पर पृथ्वी में हिंकार अग्नि में प्रस्ताव, अन्तरिक्ष मे उद्गीथ, आदित्य में प्रतिहार और स्वर्ग में निधन की भावना बतायी है। उसमें किसी व्रत का उल्लेख नहीं। इस शकरी में लोकों की निन्दा न करना यह व्रत है। वास्तव में तो सब एक-सी ही उपासनायें हैं। यह मैंने सातवीं शकरी उपासना आपसे कही (अब आठवीं जो रेवती उपासना है उसका वर्णन मैं आगे करूँगा, जो कि पशुओं में अनुस्यूत है। अर्थात् यह उपासना पशुओं मे ऋत्वङ्गों की भावना करके की जाती है।"

छप्पय

लोकनि में अनुस्यूत शक्वरी करै उपासन।
ओत प्रोत तिहिँ लोक जानिकें देवै तिहि मन॥
लोकवान बनि जाइ लोक उत्तम सो पावै।
पूर्ण आयुकूँ पाइ सुजीवनि तिहि बनि जावै॥
प्रजावान पशुवान बनि, विमल कीर्ति पावै जगत।
कबहुँ भूलतैं नहिँ करै, लोकनि निन्दा यही व्रत॥

इति छांदोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में
सत्रहवाँ खण्ड समाप्त।

रेवती और यज्ञायज्ञीय साम की उपासना

(१२६)

अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्‌गीथोऽश्वाः
प्रतिहारः पुरुषो निधनमेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥*

(छा० उ० द्वि० अ० १८ ख० १ मं०)

छप्पय

कहँ रेवती करो अजा हिंकार उपासन।
मेड़ कहीं प्रस्ताव गाय उद्‌गीथ सु-पावन॥
हैं घोड़ा प्रतिहार पुरुषकूँ निधन बतायो।
पशुनि माहिँ अनुस्यूत रेवती साम कहायो॥
आयुवान पशुवान नर, प्रजावान कीरति लहत।
करै उपासन रेवती, पशु नहिँ निन्दे यही व्रत॥

सामवेद के दश भेदों मे से गायत्र, रथन्तर, वामदेव्य, बृहत् वैरूप, वैराज और शक्वरी इन सात प्रकार की उपासनाओं का वर्णन कर चुके, अब आठवीं और नववीं जो रवेती और यज्ञायज्ञीय उपासनायें हैं उनका वर्णन किया जाता है। रवेती उपासना पशुओं मे तथा यज्ञायज्ञीय उपासना पशुओं के अङ्गो मे अनुस्यूत है। पहिले

---

* रेवती उपासना मे बकरियाँ हिंकार हैं, भेडें प्रस्ताव हैं। गौयें उद्‌गीथ हैं, घोडे प्रतिहार हैं और पुरुष ही निधन है। यह रेवती उपासना पशुओं मे ओतप्रोत है। अनुस्यूत है।

कुछ लोग पशुओं के अंगों द्वारा यज्ञ किया करते थे। कुछ इसके विरोधी थे। शास्त्र का वचन था, कि अज के द्वारा होम करे। कुछ लोग अज का अर्थ बकरा करते थे, कुछ ऋषिगण अज का अर्थ करते चावल आदि जो बोने से उत्पन्न न हों जैसे चावल फल आदि। इस पर राजा उपरिचर को मध्यस्थ बनाया। उन्होंने देवताओं के पक्ष में निर्णय दिया। इस पर ऋषियों ने उसे शाप देकर उसको आकाश में विचरण करने की शक्ति नष्ट कर दी। इस प्रकार वैदिक काल से एक मांस के पक्षपाती दूसरे मांस के विरोधी दो पक्ष चले आते हैं। एक पक्ष वाले यज्ञों में पशुओं का बलिदान करते हैं, दूसरे पक्ष वाले मुनि अन्नों द्वारा ही यज्ञ कार्यों को सम्पन्न कर लेते हैं। अथर्ववेद की ऐसी ही एक श्रुति में कहा गया है—कुछ मुग्ध-मूढ़-लोग जिन्हें असुर ही कहना चाहिये। कुत्ते के द्वारा यज्ञ करते हैं, कुछ गौ के अंगों से भी बहुधा यज्ञ करते हैं। यहाँ इस यज्ञायज्ञीय उपासना में मांस न खाने का व्रत बताया है। अतः ये मांस के विरोधी हैं। रेवती पशुओं में और यज्ञायज्ञीय, यज्ञीय पशुओं के अंगों में अनुस्यूत है। उन्हीं का वर्णन आगे करेंगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अब रेवती उपासना को कहते हैं-यह उपासना पशुओं में ओतप्रोत है अर्थात् यह उपासना पशुओं में की जाती है। जैसे बकरियाँ हैं, इन्हें हिंकार माने। भेड़ों को प्रस्ताव, गायों को उद्‌गीथ, घोड़ियों में प्रतिहार भावना करे तथा पुरुषों में निधन भावना करके उपासना करे।

जो इस रेवती साम की उपासना के तत्त्व को जान कर इसे पशुओं में ओतप्रोत समझकर उपासना करता है, यह बहुत से पशुओं का स्वामी होता है, यह पूर्ण आयु का व्याधियों से रहित होकर उपभोग करता है। उसका जीवन परम उज्वल होता है।

वह प्रजावान पशुवान तथा कीर्तिवान होता है, उसकी महत्ता की ख्याति सर्वत्र फैल जाती है। इस रेवती उपासना को भी व्रत सहित करना चाहिये।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! इस रेवती उपासना का व्रत क्या है ?"

सूतजी ने कहा—"रेवती के उपासक साधक को किसी भी पशु की निन्दा न करनी चाहिये यही इसका व्रत है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! दूसरे अध्याय के षष्ठ खण्ड में जो पशुओं में पाँच प्रकार की सामोपासना बतायी है, उसमे और इस रेवती उपासना में क्या अन्तर है ?"

सूतजी ने कहा—"कुछ भी अन्तर नहीं, भगवन् ! दोनो में क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार और निधन मे बकरियाँ भेडें, गौयें, अश्व और पुरुष की भावना करके उपासना बताई है। इस रेवती उपासना में पशुओं की निन्दा न करे यह व्रत विशेष है। इसके अनन्तर यज्ञायज्ञीय सामोपासना है। यह पशुओं के अगों मे ओतप्रोत है। शरीरों में जो रोम होते हैं, वही तो हिंकार है। त्वचा प्रस्ताव है, मास उद्‌गीथ है, अस्थि प्रतिहार है। मज्जा निधन है। इसकी उपासना यज्ञीय पशुओं के अगों में करनी चाहिये। जो इस रहस्य को जानकर यज्ञीय पशुओ के अगो में तत् तत् भावना करके उपासना करता है। उसका कोई भी अग कभी विकल नहीं होता। अर्थात् वह लूला, लँगडा, काना आदि नहीं होता। वह अपनी पूर्ण आयु का उपभोग करके शतायु होता है, उसे किसी प्रकार की शरीरिक व्याधि नहीं होती। वह अपना सम्पूर्ण जीवन उज्वलता के साथ व्यतीत करता है। वह प्रजावान पशुवान तथा महान् होता है।

उसकी कीर्ति अक्षुण्ण बनी रहती है, यह उपासना भी व्रतपूर्वक करनी चाहिये।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! इस यज्ञायज्ञीय उपासना का व्रत क्या है।"

सूतजी ने कहा—"कम से कम एक वर्ष पर्यन्त मांस भक्षण न करे अथवा जीवन में कभी भी मांस भक्षण न करे यही इस उपासना का व्रत है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! यह मैंने सामवेद की आठवीं और नववीं रेवती तथा यज्ञायज्ञीय उपासना कही। अब आगे अन्तिम दशवी राजन उपासना का वर्णन आपसे करूँगा, उसे कृपा करके श्रवण करें।"

छप्पय

है यज्ञायज्ञीय लोम हिंकार बताये।
त्वचा कह्यो प्रस्ताव मांस उद्गीथ जताये॥
कहीं अस्थि प्रतिहार सुमज्जा निधन कहायो।
अंगनि में अनुस्यूत साम अँग नवम बतायो॥
जानि सुघर अँग प्रजा पशु, कीर्ति विमल हो आयु शत।
कबहुँ मास खावै नहीं, एक बरष वा यही व्रत॥

इति छांदोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में
अठारह और उन्नीसवाँ खण्ड समाप्त।

सामवेद की राजन उपासना

(१२७)

अग्निर्हिंकारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजन देवतासु प्रोतम् ॥*

(छा० उ० द्वि० प्र० २० ख० १ म०)

छप्पय

सामवेद दश भेद उपासन दशवीं राजन ।
देवनि में अनुस्यूत भाव करि होवें पावन ॥
अग्निदेव हिंकार वायु प्रस्ताव बतावें ।
आदित्य हु उद्गीथ भाव करि जो नर ध्यावें ॥
नक्षत्र हु प्रतिहार हैं, चन्द्रदेव हैं निधन मुनि ।
भाव सहित करि उपासक, पावैं सब सुख सुनहु मुनि ॥

देवताओं की संख्या तो असंख्य है। फिर भी तेतीस कोटि देवता बताये हैं। इनमें कुछ गण देवता हैं जो एक गण में साथ ही गिने जाते हैं। जैसे १२ आदित्य देव, ३० तुषितादेव, १० विश्वेदेवा, १२ साध्यगण, ६४ आभास्वर, ४९ मरुद्गण, २२० महाराजिक,

---

* अग्नि देव हिंकार हैं वायुदेव प्रस्ताव हैं, सूर्यदेव उद्गीथ हैं, समस्त सत्ताईस नक्षत्र ही मानो प्रतिहार हैं, चन्द्रदेव ही निधन हैं। यह जो साम की राजन नाम की उपासना है, यह देवताओं में ओतप्रोत है, अतः देवताओं में भावना करके करनी चाहिये।

११ रुद्र तथा ८ वसु। कुछ पृथक् देवता होते हैं जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर देवताओं में मुख्य तीन ही हैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तीन इनकी शक्तियाँ हैं। अतः तीन को तीन से गुणा करने पर ९ होते हैं। अतः तीन के शब्द को बायें से दायीं ओर ९ बार लिखे। जैसे ३३३३३३३३३ अर्थात् तैंतीस करोड़ तैंतीस लाख तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस सब देवता हैं। वैसे वर्णाश्रम धर्म पृथ्वी पर ही है, देवलोक में वर्णाश्रम धर्म नहीं है, फिर देवताओं में भी कहीं-कहीं वर्ण भेद का उल्लेख है महाभारत में आदित्यों को क्षत्रिय, मरुतगणों को वैश्य, अश्विनी कुमारों को शूद्र तथा आंगिरस देवताओं को ब्राह्मण बताया है।❀ इन सब देवताओं में पंचदेवों की ही मुख्य रूप से उपासना की जाती है। (१) गणेश, (२) सूर्य, (३) विष्णु, (४) शिव और (५) शक्ति ये ही पंचदेव हैं। कहीं-कहीं अग्नि को भी और मिलाकर ६ देव मुख्य माने गये हैं।

इनमें पाँच देवता प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं (१) अग्निदेवता, (२) वायुदेवता, (३) सूर्यदेवता, (४) चन्द्रदेवता और चन्द्रमा की २७ पत्नी रूप में जो नक्षत्र हैं वे भी प्रत्यक्षदेव हैं। यद्यपि वायुदेव नेत्रेन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष नहीं दिखायी देते, फिर भी स्पर्शेन्द्रिय द्वारा उनका प्रत्यक्ष होता है। इन प्रत्यक्ष देवों में सामवेद के पाँच ऋत्वज्ञों की भावना करके जो उपासना की जाती है वही राजन उपासना है। इस उपासना का व्रत बताया है, कि ब्राह्मणों की कभी भी निन्दा न करे।

अब सन्देह यह होता है, कि अन्य उपासनाओं में जो व्रत

❀ नवंवाङ्गास्त्रि वृद्धाः स्पुर्देवाना दशकैगणे। ।
ते ब्रह्म विष्णुरुद्राणा शक्तीनां वर्णं भेदतः ॥

(आगमे)

बताये हैं, उनमे तो जो वस्तु उस उपासना मे अनुस्यूत है उसकी निन्दा न करने का व्रत बताया है। जेसे बृहत् उपासना सूर्य में अनुस्यूत हे तो वहॉ सूर्य की निन्दा न करने का व्रत बताया हे। वराज उपासना ऋतुओं मे अनुस्यूत हे अतः ऋतुओ की निन्दा न करे यही व्रत हे। शक्वरी उपासना लोकों मे अनुस्यूत हे अतः लोकों की निन्दा न करे। रेवती उपासना पशुओ मे अनुस्यूत हे तो वहॉ पशुओं की निन्दा न करे यह व्रत बताया हे। यहॉ राजन उपासना अनुस्यूत ता देवताओ मे है और इसमे व्रत बताया है, कि ब्राह्मणों की निन्दा न करे। यह कैसी बात है ?

बात यह हे कि जेसे स्वर्ग मे तो अमृत है जिसे देवता पीते हैं। पृथ्वी पर घृत को ही अमृत बताया है (आज्य वे अमृतम्) इसी प्रकार ब्राह्मण पृथ्वी के देवता ही हैं। इसी से इनका नाम भूदेव हे। जो जाति से, कुल से, अपनी शुद्ध वृत्ति से, स्वाध्याय और वेदज्ञान से युक्त हो वही ब्राह्मण है। जो मान और अपमान मे हर्ष और क्रोध नहीं करता, समस्त प्राणियों को जो अभय प्रदान करता हे। जो भीड भाड से डरता है, धन को नरक मानता है और परस्त्री को शव समझता हे, जो सग्रह नहीं करता जो मिल जाता है उसी से देह ढक लेता है, जो मिल जाता है उसी को खाकर प्राणों को तृप्त कर लेता हे, जहॉ कहीं भी सो जाता है वही ब्राह्मण है। जो नि सग रहता हे, जो एक दिन से अधिक कहीं ठहरता नहीं अर्थात् विरक्तभाव से पर्यटन करता रहता हे शात गम्भीर रहता हे, जिसका सम्पूर्ण जीवन धर्म के ही निमित्त होता हे, रति केवल सतानोत्पत्ति रूप धर्म के ही निमित्त करता हे, जो रात्रि दिन निरन्तर पुण्य कार्यों में लगा रहता है। ऋषिगण उसे ही ब्राह्मण कहत हैं। ब्राह्मणो के हाथ में स्वर्ग है, उनकी वाणी मे वेद प्रतिष्ठित हैं हाथों मे भगवान् हैं, उनका शरीर तीर्थ रूप है यज्ञ रूप

है। नाड़ियों में त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। कण्ठ के कुहर में वेद माता गायत्री रहती है हृदय में ब्रह्माजी निवास करते हैं। या वेद सम्मत है। उनके स्तनों के बीच में धर्म रहता है पीठ में अधर्म है। ऐसे ब्राह्मण पृथ्वी के साक्षात् देवता ही हैं।*

इसीलिये राजन उपासना मे ब्राह्मणों की निन्दा न करने का व्रत है। अब उस राजन उपासना का वर्णन किया जाता है।

सूतजी कहते हैं - "मुनियो ! अब मैं राजन साम की उपासना को बताता हूँ। यह उपासना देवताओं मे अनुस्यूत है। अर्थात् देवताओं मे कत्वङ्गों की भावना करके उपासना करनी चाहिये। इनमे सबसे प्रत्यक्ष तेजस्वी अग्नि देवता हैं, ये समस्त देवों के मुख हैं। ये ही सब देवों के भागों को लेजाकर उन्हें पहुँचाते हैं। अतः इन अग्निदेव मे हिकार की भावना करके उपासना करनी चाहिये। दूसरे प्रत्यक्ष देव वायु हैं। ये ही सबके प्राण हैं, जीवन हैं, अतः इनमे प्रस्ताव की भावना करके उपासना करनी चाहिये। तीसरे प्रत्यक्षदेव सूर्यनारायण हैं, ये सबको प्रकाश प्रदान करते हैं। जल को चुराकर वर्षा में बरसाते हैं। इन सूर्य में उद्गीथ का भावना करनी चाहिये। प्रजापति कश्यप ने अपनी साठ कन्याओं मे से २७ चन्द्रमा को दीं। ये ही २७ नक्षत्र कहाते हैं, जो आकाश मे प्रत्यक्ष दीखते हैं इन नक्षत्रों में प्रतिहार की भावना करनी चाहिये। इन नक्षत्रों के तथा ब्राह्मणों और सर्व

---

* ब्राह्मणानां करे स्वर्गा वाचो वेदाः करे हरिः।
गात्रे तीर्थानि यागाश्च नाडीषु प्रकृतिस्त्रिवृत्॥
सावित्री कठ कुहरा हृदय ब्रह्म सञ्ज्ञतम्।
तेषा स्तनान्तरे धर्मः पृष्ठेऽधर्मः प्रकीर्तितः॥
भू देवा ब्राह्मणा राजन् ! पूज्या वन्द्याः सदुक्तिभिः।

(कल्कि पुराणे)

ओषधियों के जो पति चन्द्रमा हैं, उनमे निधन की भावना करके उपासना करनी चाहिये। यह उपासना प्रत्यक्ष देवताओं मे अवस्थित हे, देवताओं मे अनुस्यूत हे।

जो साधक इस राजन उपासना को करता हे, उसे इन देवताओं के लोकों की प्राप्ति होता हे अथवा देवताओं के समान ऐश्वर्य प्राप्त होता हे, अथवा देवताओं के साथ परस्पर मे मिल जाते हैं, देवताओं का सालोक्यत्व, सर्ष्टित्व तथा सायुज्य प्राप्त होता हे, इस उपासना को भी व्रत पूर्वक करना चाहिये।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! इस उपासना का व्रत क्या है?"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! इस उपासना का व्रत यह हे, कि कभी भी ब्राह्मणों की निन्दा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि श्रुति का वचन हे, कि ये जो ब्राह्मण हैं, वे प्रत्यक्ष देवता ही हैं (एत वे देवाः प्रत्यक्ष यद् ब्राह्मणाः) जब ब्राह्मण प्रत्यक्ष ही पृथ्वी के देवता–भू सुर-भू देव–हैं, तो उनकी निन्दा देवनिन्दा क ही सदृश है। अतः राजन उपासना के उपासक का भूल से भी कभी ब्राह्मणों की निन्दा न करनी चाहिये। ब्राह्मणों की ही क्या कभी भी किसी की भी निन्दा न करनी चाहिये। निन्दा से बडा पाप कोई नहीं हे, निन्दक घोर नरकों मे जाता हे। जो निन्दा प्रिय हो, जिसे निन्दा अच्छी लगती हो, जो परोक्ष मे या प्रत्यक्ष मे दूसरों की निन्दा करता हो, उस घोर नारकीय जीव समझना चाहिये, निश्चय ही वह नरकों से लौटकर आया हे, किसी पूर्व सुकृत के कारण उसे मानव योनि मिल गयी है। अतः वह पापी होने के कारण कभी भी जीवन मे सुखी नहीं रह सकता। उसे भाँति-भाँति के शारीरिक रोग कष्ट देते रहते हैं, दूसरो से ईर्ष्या रखने के कारण वह आधिव्याधियों से सदा युक्त बना रहता है। उसका

शरीर तथा मन कभी स्वस्थ नहीं रहता। निन्दक भगवत् उपासना का अधिकारी ही नहीं। वह तो लोभाभिभूत होने के कारण रात्रि-दिन धन संग्रह करने में ही लगा रहता है। मर कर वह पुनः निश्चय ही नरका में जाता है। अतः निन्दक पुरुष के तीन जन्मों का वृत्तान्त प्रत्यक्ष ही है।

सूतजी शौनकादि नैमिषारण्य वासी ऋषियो से कह रहे हैं—"मुनियो! यह मैंने अत्यन्त ही संक्षेप मे राजन उपासना कही। अब सामवेद की सर्व विषयक उपासना कैसे करनी चाहिये इसका वर्णन मैं आपसे करूँगा। आशा है, आप इसे दत्तचित्त होकर श्रवण करेंगे।"

छप्पय

देइ देव सालोक्य सार्ष्टि सायुज्य हु राजन।
देवनि में अनुस्यूत मामकी सुखद उपासन॥
उज्वल जीवन होइ आयु सब भोगे पूरन।
प्रजावान पशुवान होइ पावै सुख पावन॥
जग में पावै कीर्ति अति, धर्म माहिँ नित-नित निरत।
विप्रनि की निन्दा नहीं-करै यही है तासु व्रत॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में
बीसवाँ खण्ड समाप्त।

—:—

सामवेद की सब में ओतप्रोत उपासना

[१२८]

त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय इमे लोकाः स प्रस्तावोऽग्निर्वायुरा-दित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वयाँसि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तन्निधमेतत्साम सर्वास्मिन्प्रोतम् ॥*

(छा० उ० २ प्र० २१ ख० १ मं०)

छप्पय

सब में जो अनुस्यूत साम की सुनहु उपासन।
त्रयी कही हिंकार लोकत्रय प्रस्तावहु सुन॥
अग्नि, वायु, आदित्य, यही उद्गीथ कहावें।
खग, मीरीचि, नक्षत्र, इन्हें प्रतिहार बतावें॥
पितर, सर्प, गन्धर्व ये, कहे निधन अनुस्यूत सब।
जाको जो फल होत है, कहहुँ ताहि सो सुनहु अब॥

सामवेद के जो (१) गायत्र, (२) रथन्तर, (३) वामदेव्य, (४) बृहत्, (५) वैरूप, (६) वैराज, (७) शक्वरी, (८) रेवती, (९) यज्ञायज्ञिय और (१०) राजन ये जो दश भेद पीछे बताये

---

* तीनो वेद ही हिंकार है, त्रिलोक ही प्रस्ताव है, अग्नि, वायु और आदित्य ये तीन देव ही उद्गीथ हैं। नक्षत्र, पक्षी और किरणें ही प्रतिहार हैं। सर्प, गन्धर्व तथा पितृगण ही निधन हैं। यही सर्व विषयक सामोपासना है, यह सभी में अनुस्यूत हैं। ओतप्रोत है।

थे, उन दशों की उपासना का वर्णन हो चुका अब आगे सामवेद की सर्वविषयक उपासना का वर्णन करेंगे। सब मे जो सरकता रहे व्याप्त रहे वही सर्व कहलाता है (सर्वस्मिन् सर्वति इति= सर्व्वः) सम्पूर्ण, सकल, विश्व, समग्र, निखिल अखिल, सर्व, सम्पूर्ण ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं। वास्तव मे तो सर्व शब्द का अर्थ है भगवान् विष्णु। वे ही सब मे व्याप्त हैं, वे ही एक से बहुत बन गये हैं। उन्होने कहा है मैं ही सबके हृदय मे सन्निविष्ट हूँ (सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः, गीता) जिसे सब समय सभी का समान भाव से ज्ञान रहे वही सर्व है। उत्पत्ति, स्थिति, लय, सत् असत कोई बात कभी जिनसे छिपी न रह सके वे ही सर्व हैं।* भगवान के अतिरिक्त ऐसा और कौन हो सकता है। वे ही सर्वात्मा जब जगत् का रूप रखकर एक से बहुत हो जाते हैं तो सर्व का अर्थ होता है सम्पूर्ण संसार। सामवेद की सर्व विषयक उपासना में पहिले सबको तीन में बाँट दिया है। क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत त्रिगुणात्मक है। तीन से ही सम्पूर्ण सृष्टि है। जैसे तीन गुण, तीन देव, तीन वेद, तीन दोप तथा तीन लोक आदि तीन से ही संसार विस्तृत हो गया है। इन तीन को उन्होंने पंचात्मक कर दिया है। सामवेद के जो पाँच (१) हिंकार, (२) प्रस्ताव, (३) उद्गीथ, (४) प्रतिहार और (५) निधन ये पाँच कल्वङ्ग हैं, इन पाँचों मे ३-३ का समाहार करके इसकी सर्व संज्ञा दे दी है। इसमें विश्व ब्रह्माण्ड को समस्त वस्तुएँ आ गयीं। जैसे त्रयी विद्या है। विद्या उसे कहते हैं, जो हमें मुक्ति का मार्ग दिखाकर मुक्ति तक पहुँचा दे। मुक्ति मे बाधक वस्तु है मृत्यु। जो मरता है, उसे जन्म लेना पडता है, जो जन्मता है

---

* प्रभवश्च सतश्चैव सर्वस्य प्रभवाव्ययाः।
सर्व्वस्य सर्वदा ज्ञानात सर्व्वमेव प्रचक्षते ॥

उसकी मृत्यु ध्रुव है। जन्म मृत्यु के चक्कर से जो छुड़ा दे वही विद्या है। निष्कामभाव से किया हुआ कर्म है मृत्यु से बचा सकता है। और ज्ञान ही अमर कर सकता है। अतः कर्म और ज्ञान का वर्णन जिसमे हो उसी का नाम त्रयीविद्या है। कर्म किसे कहते हैं–यज्ञ के लिये जो काम किया जाय वही तो कर्म है, शेष सब कर्म तो बन्धन के कारण हैं (यज्ञार्थात् कर्मण्योन्यत्र लोकोय कर्म बन्धनः) यज्ञो में क्या होता है, देवताओं का यजन पूजन होता है, उन्हे बलि दी जाती हैं, प्रत्यक्ष देवता तो बलि लेने आते नहीं हैं। अतः अग्नि उनका मुख है, अग्नि मे देवताओं के निमित्त हवि देते हैं। तो सबसे पहिले देवताओं के स्वरूप का ज्ञान होना चाहिये। जैस जिसके हाथ में वज्र हो वही इन्द्र है। इसलिये यज्ञ मे सबसे आवश्यक विषय है देवताओं के स्वरूपों का ज्ञान। ऋक्वेद मे विशेषकर देवताओं के स्वरूपों का ही वर्णन है। प्रजापति ने प्रजा की सृष्टि यज्ञ के साथ की। मनुष्य यज्ञ करें, देवता सन्तुष्ट होकर वृष्टि आदि करें जिससे परस्पर मे दोनों काम चल जाय। इसलिये यज्ञ कर्म अत्यावश्यक है। वह यज्ञ कैसे करना चाहिये इसकी विधि का वर्णन प्रायः यजुर्वेद मे है। देवताओं के स्वरूप का ज्ञान हो गया, यज्ञ की विधि जान ली गयी अब देवताओं की स्तुति किस गायन से की जाय, उन गानों का वर्णन सामवेद में है। यज्ञ मे गायन करने योग्य मन्त्र–किस मन्त्र से किस देवता की स्तुति गान की जाय, ऐसे मन्त्र सामवेद में हैं। ये ऋक्, यजु और साम तीनों ही वेदत्रयी विद्या के नाम से विख्यात हैं। अतः विश्व ब्रह्माण्ड का सर्वज्ञान इन्हीं मे आ गया।

देवताओं मे प्रत्यक्ष मुख्य तीन ही देव हैं, एक अग्नि, दूसरे वायु, तीसरे सूर्य। अतः इन तीनों के अन्तर्गत समस्त देवताओं

का समाहार हो गया। आकाश में विचरण करने वाली तीन ही वस्तुएँ हैं। सूर्य चन्द्रादि ग्रहों को किरणें, पख वाले पक्षी और सभी नक्षत्र इन तीन मे आकाशगामी सभी वस्तुओं का समाहार हो गया। देवताओं का समाहार तो अग्नि, वायु और आदित्य में हो चुका। अब देवताओं के अतिरिक्त उपदेव भी बहुत होते हैं। अतः सर्प, गन्धर्व और पितरों मे सभी उपदेवों का समाहार हो गया। गन्धर्व कहने से यक्ष राक्षस, पिशाच, असुर आदि सभी उपदेवों का, सर्प कहने से नाग, सर्प आदि का समावेश है। सर्प एक सिर वालों को कहते हैं। नाग बहु सिर वाले होते हैं। पितर कहने से (१) कव्यवाह, (२) अनल, (३) सोम, (४) यम, (५) अर्यमा, (६) अग्निष्वात्त और (७) बर्हिषद् इन सात नित्य पितरों का तथा मर कर जो अस्थायी पितर योनि मे जाते हैं उन सबका समावेश हो जाता है। ये सब उपदेव कहलाते हैं। तीन लोकों में १४ भुवनों का समावेश हो गया। नीचे के सात लोक (भू विवर) और पृथ्वी ये आठ भू लोक दूसरा अन्तरिक्ष लोक स्वर्गलोक से लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्त पाँचों लोक स्वर्ग कहलाते हैं। इस प्रकार तीन लोक कहने से चतुर्दश भुवन आ जाते हैं। इन पाँचों की साम के ५ कृत्यङ्गों के रूप में उपासना करना यही सर्व विषयक साम की उपासना है।

सूतजी की कहते हैं—"मुनियो! अब सर्वविषयक साम की उपासना को बताते हैं। ऋक, यजु और साम ये जो तीन वेद हैं। ये तीनों मिलकर त्रयीविद्या कहलाते हैं, इस त्रयीविद्या मे हिंकार की भावना करके उपासना करे। भू, भुव और स्वर्ग ये तीनों मिलकर त्रिलोक कहलाते हैं। इन त्रिलोकों मे प्रस्ताव की भावना करे। अग्नि, वायु और आदित्य ये तीनों त्रिदेव कहलाते हैं, इनमें उद्गीथ की भावना करे। नक्षत्र, पक्षी और किरणें ये

हैं, वे अन्तरिक्ष में विचरण करते हैं। इनमें प्रतिहार की भावना करे। सर्प, गन्धर्व और पितृगण ये उपद्रव कहाते हैं, इनमें निधन की भावना करे। यही साम की सर्वविषयक सामोपासना है। यह संसार के सभी पदार्थों में अनुस्यूत है।

अब इस सर्वविषयक उपासना के उपासक को क्या फल प्राप्त होता है, इसे बताते हुए कहते हैं, कि जो इस सर्वविषयक साम की उपासना करता है, साम को सब में अनुस्यूत मानकर इसका यजन पूजन करता है, वह भी सर्वरूप हो जाता है। क्योंकि जो जिसकी उपासना करता है वह उसी के स्वरूप का हो जाया करता है। इस विषय में श्रुति का भी एक वचन है, वह इस प्रकार है—

पीछे जो त्रयीविद्या, तीन लोक, तीन देव, तीन खग तथा तीन उपदेशों के पाँच प्रकार की [illegible] को जानता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है, कारण इन १२ से [illegible] और कोई है ही नहीं ये ही सब संसार में व्याप्त हैं। सर्व [illegible]। जो इनको जानता है, उसे और कुछ भी जानने को नहीं रह जाता। वह सब का ज्ञाता हो जाता है। उसके लिये दसों दिशायें बलि देने को उद्यत हो जाती हैं। इस उपासना को भी व्रत पूर्वक करे।

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! इस उपासना का व्रत क्या है?"

सूतजी ने कहा—"मैं सब कुछ हूँ" ऐसी भावना सदा सर्वदा करता है। यही इस उपासना का व्रत है। यही व्रत है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह मैंने उत्कर्षमयी साम की सर्वविषयक उपासना कही। अब साम कोन–सा [illegible] कैसे गाना चाहिये, इस विषय को [illegible]।"

छप्पय

है श्रुति हू को कथन पाँच जो तीनि-तीनि हैं।
ये सबई तैं श्रेष्ठ श्रेष्ठ इनतैं न और हैं॥
सर्वविषय जो साम उपासन जो जन जाने।
होवै वह सरवज्ञ सबहि कछु हौं यह माने॥
दश दिशि बलि अरपित करें, व्याप्त साम सब में सतत।
हौं ही हू सब में निहित, सब विषय को यही व्रत॥

इति छान्दोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में
इक्कीसवाँ खण्ड समाप्त ।

साम के विविध आगानों उद्गीथों के नियम

[१२६]

विनर्दि साम्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथोऽनिरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य मृदु श्लक्ष्ण वायोः श्लक्ष्ण बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य तान्सर्वानेवोपसेवेत वारुण त्वेव वर्जयेत् ॥*

(छा० उ० २ प्र० २२ खं० १ मं०)

छप्पय

साम विनर्दी गान वरन करि पशुअनि हितकर।
अग्निदेव उद्गीथ प्रजापति अनिरुकहिं वर॥
कह्यो निरुकहु सोम वायु को मृदुल सरल स्वर।
इन्द्र सरल बलवान बृहस्पति क्रौंच सरिस स्वर॥
अपध्वान्त है वरुण को, उद्गीथनि सेवन करै।
वरुण गान अति भ्रष्ट है, तातैं ताकूँ परिहरै॥

---

* अब पशुओं के हितकर जो सामवेद का 'विनर्दि' नामक गायन है, उसका वरण करता हूँ यह अग्नि देवता सम्बन्धी उद्गीथ है। अनिरुक्त नाम का उद्गीथ प्रजापति का है, निरुक्त सोम का उद्गीथ है। वायु का मृदुल और श्लक्ष्ण उद्गीथ है। श्लक्ष्ण और बलवान उद्गीथ इन्द्र

व्याकरण शास्त्र के सदृश संगीत शास्त्र के भी बड़े कठिन नियम हैं। जैसे व्याकरण के अनुसार शब्दोच्चारण मे तनिक भी त्रुटि हो गयी। स्वर, व्यञ्जन, उदात्त, अनुदात्त या उच्चारण सम्बन्धी कुछ भी गड़बड़ी हो गयी, तो वह शब्द अपने अर्थ को न कहकर दूसरे को कहता है। जैसे सकृत् शब्द है इसका अर्थ 'थोडा' है उसी को दन्ती सकार न करके तालव्य सकार कर दो 'शकृत्' उच्चारण कर दो, तो विष्ठा का बोधक हो जायगा। यही बात सगीत शास्त्र के सम्बन्ध में है। अमुक राग में कौन-कौन से स्वर लगने चाहिये इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। एक स्वर की भी गड़ बड़ी हो गयी, तो राग दूषित हो जाता है। मृदु को मंद स्वर मे कह दिया या मद को तार स्वर में गा दिया तो रस ही भंग हो जाता है। अतः गान के नियमों को जानकर ही गान करना चाहिये। पहिले हमारे देश में सामगायन का सर्वत्र प्रचलन था। वेद पाठियों मे स्थान-स्थान पर साम गाने वाले ब्राह्मण मिल जाते थे। जब वे सस्वर साम का गायन करते थे, तब बड़ा ही पावन वातावरण बन जाता था। यज्ञों के अभाव के कारण, वेदाध्ययन में रुचि न रहने के कारण, अर्थ को ही सब कुछ समझने के कारण, निःस्वार्थ भाव से अध्ययन न करने के कारण, अधर्म की वृद्धि के कारण तथा कलिकाल के प्रभाव के कारण विधिवत् वेदों का स्वाध्याय लुप्त प्राय: हो गया। अब सामवेद के गायक कहीं विरले ही मिलते हैं। इससे इस विषय को समझने में बड़ी असुविधा हो गयी। पहिले जब सर्वत्र साम गायन होता

का है। क्रौञ्च उद्गीथ बृहस्पति का है वरुण का उद्गीथ अपध्वान्त है। और सब उद्गीथों का तो सेवन करे, किन्तु भ्रष्ट होने से वरुण के उद्गीथ का परित्याग कर दे।

था, तब ब्राह्मणो के छोटे-छोटे बालक भी साम गायन सम्बन्धी नियमों से परिचित होते थे और उन्हीं नियमों के अनुसार साम गायन करते थे। सामवेद के गायन करने वालों को उद्गाता कहते थे (उद्गायति सामवेद य सः=उद्गाता) उद्गीत उसे कहते हैं जो ऊँचे स्वर से गाया जाय (उद् उच्चैः गीयते+इति= उद्गीतः) सामवेद मे उसे उद्गीथ कहते हैं। सामवेद के द्वितीय अध्याय का नाम उद्गीथ है। वैसे समस्त सामवेद की ध्वनि को उद्गीथ कहते हैं। उद्गीथ प्रणव–ओंकार–का भी वाचक है। यहाँ पर जो भिन्न भिन्न देवताओ के उद्गीथ का वर्णन करेंगे वह उद्गीथ शब्द सामवेद की ध्वनि के ही सम्बन्ध मे है। अमुक देवता सम्बन्धी उद्गीथ का अर्थ है सामवेद की अमुक देवता सम्बन्धीस्तुति का गान। अब आगे सामवेद के उन्हीं नियमों को बतावेंगे, कि किस देवता के उद्गीथ को कैसे गाना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सामवेद के गानों के बहुत भेद हैं। उनमें से एक भेद का नाम 'विनर्दि' है। विनर्दि शब्द का अर्थ है विशेष प्रकार से डकराना। वृषभ नर्दन करता है डकराता है अतः बैल के सदृश डकराने को विनर्दि कहते हैं (विशिष्टो नर्दः= स्वर विशेष ऋषभ कूजित समः अस्याति+इति=विनर्दि) यह अग्नि देवता सम्बन्धी उद्गीथ है। अर्थात् यह उद्गायन अग्नि को लक्ष्य करके गाया जाता है। यह गायन पशुओं के लिय बहुत हितकर है। पशुओं सम्बन्धी कोई रोग हो या पशुओं में कोई दोष आ गया हो, तो इस गायन से वह दोष या रोग दूर हो जाता है। जब यजमान उद्गाता से कहे—आप विनर्दि गान करें। जब यजमान या दूसरा उद्गाता इस प्रकार प्रार्थना करे तो साम के विनर्दि भाग का उद्गान करना चाहिये। यह तो अग्नि देवता का उद्गान हो गया। अब प्रजापति–ब्रह्मा–का उद्-

गान बताते हैं। प्रजापति का उद्गीथ अनिरुक्त है अर्थात् जिसकी निरुक्ति–समता–उपमा–किसी अन्य के साथ नहीं की जा सकती। अर्थात् प्रजापति के लिये जो उद्गान किया जाता है वह अनुपमेय है, उसकी अनिरुक्त संज्ञा है सोमदेव सम्बन्धी जो उद्गीथ है, उसकी संज्ञा निरुक्त हैं। निरुक्त का अर्थ है स्पष्ट अर्थात् सोमदेव सम्बन्धी जो उद्गायन है वह ऐसा स्पष्ट है, कि उसे सबही अधिकारी समझ सकते हैं। वायुदेव का जो उद्गायन है वह मृदुल है *अर्थात् चिकना है और श्लक्ष्ण है सरलता से उच्चारण किया* जा सकता है और रसीला है सरस है। इन्द्र सम्बन्धी जो उद्गान है वह सरस तथा बलवान् है। उद्गाता को उसके गायन करने मे अधिक बल लगाना पड़ता है। देवगुरु-बृहस्पति का जो उद्गीथ है वह क्रौञ्च पक्षी के सदृश है। जो जल के समीप रहता है और जल के छोटे-छोटे जीवों को खाता है।

वरुण देव जो जल के अधिष्ठातृ देव हैं और पश्चिम दिशा के लोकपाल है, उनका उद्गायन अपध्वान्त है–अर्थात् फूटे हुए कांसे के बर्तन को बजाने से जैसा शब्द होता है वैसा ही शब्द वरुण सम्बन्धी गायन का है। अतः भगवती श्रुति आज्ञा देती है प्रजापति, सोम, वायु, इन्द्र और बृहस्पति सम्बन्धी सामवेद के आगानों को तो यज्ञों मे गायन करे, किन्तु वरुण देवता सम्बन्धी आगानों का गायन न करे, क्योंकि वह अपशब्द होने से शापित है।

जिस समय अग्नि, प्रजापति, सोम, वायु, इन्द्र, बृहस्पति आदि के स्तोत्रो का स्तवन करे उस समय ध्यान कैसा करे, इसका प्रकार बताते हैं। गायन के समय ऐसी भावना करे, कि मैं ब्रह्मादिक जितने तैतीस कोटि देवता हैं, उन सबके लिये अपने गायन से अमृतत्व प्राप्ति का साधन करूँ। ऐसी भावना करता

हुआ शुद्ध-शुद्ध गायन करे। फिर भावना करें मैं अपने गायन द्वारा जो पितृगण हैं उनके निमित्त स्वधा प्राप्ति का सम्यक प्रकार से साधन करूँ। मनुष्यों के लिये उनकी इच्छित वस्तुओं का, पशुओं के लिये उनके उपयोगी घास आदि तृणों का सुन्दर सुस्वादु पेय जल का तथा अपने यजमान के लिये स्वर्गीय सुखों के उपभोग का और अपने सुन्दर सुस्वादु चतुर्विध अन्न का साधन कर सकूँ ऐसी भावना करके मन से ध्यान करते हुए-प्रमाद रहित होकर, उच्चारण मे स्वर आदि की भूल न करते हुए आगान करे अर्थात् स्तुति पाठ करे। इस प्रकार जो सावधानी के साथ सामवेद का गायन करता है। उसे इष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनयो! इस प्रकार से मैंने आपको सामवेद के विविध आगानो के नियम बताये। अब आगे वर्णों की देवात्मता और उनके उच्चारण की विधि का वर्णन करूँगा। आशा है आप इसे प्रेमपूर्वक श्रवण करने की कृपा करेंगे।

छप्पय

देवनि हित अमृतत्व करूँ साधन चिन्त्ये यों।
पितरनि के हित स्वधा नरनि आशा पूरन हों॥
जल तृन पशुअनि मिलै स्वरग यजमानहु पावै।
अन्न मोइ मिलिजाइ, भावना करि यह गावै॥
सबई के कल्याण कूँ, सावधान ह्वै हिय धरै।
तजि प्रमाद मन ध्यान धरि, गान साम गायक करै॥

वर्णों की देवात्मता और उनके उच्चारण की विधि

[१३०]

सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं ददानीति सर्वं ऊष्माणोऽग्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति सर्वे स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्या मृत्योरात्मानं परिहराणीति ॥*

(छा० उ० २ प्र० २२ ख० ५ मं०)

छप्पय

जितने स्वर हैं सबहिं इन्द्र, आत्मा कहलावें।
ऊष्म वर्ण हैं आत्म प्रजापति के बतलावें॥
सबहिं वर्ण इस्पर्श आतमा मृत्यु निरूपन।
उद्गाता प्रति स्वरनि दोष बोले उच्चारन॥
कहे—शरण हौं इन्द्र की, तोकूँ उत्तर देई वह।
दोष प्रदर्शित ऊष्म में, ताकूँ उत्तर देइ यह॥

---

* समस्त स्वर घोषयुक्त तथा बलयुक्त बोलने चाहिये। उनके उच्चारण में 'मैं इन्द्र में बल प्रदान करूँ' ऐसी चिन्ता करे। समस्त ऊष्मा संज्ञक वर्ण अग्रस्त और अनिरस्त एवं विवृत रूप से उच्चारण किये जाते हैं उनके उच्चारण में यह सोचे 'मैं प्रजापति को आत्मदान करूँ। स्पर्श वर्णों को तनिक भी दूसरों से मिलाये बिना उच्चारण करना चाहिये उनके उच्चारण के समय यही सोचे मैं मृत्यु से अपना परिहार करूँ।

देव वाणी सस्कृत मे जो वर्ण हैं, वे वेज्ञानिक पद्धति पर आधारित हैं। वे अन्य विदेशी भाषाओं के सदृश सकेत मात्र नहीं हैं। वे जेसे जहाँ से उचारण किये जाते हैं, वैसे ही बोले जाते हैं। यह नहीं कि उचारण और, लिखावट और तथा बोलने का नियम और। एक आग्ल भाषा भाषी सज्जन जब सस्कृत पढने लगे तब उन्हें बताया गया—अकुह विसर्जनीयाना कण्ठः अकार कवर्ग, हकार और विसर्ग इनका उच्चारण कठ से होता है, तब वह यह सुनकर चकित रह गया। उसने कहा—हमारी वर्ण माला मे तो उचारण के ऐसे कोई नियम नहीं हे। आपकी भाषा विशुद्ध वेज्ञानिक ढङ्ग वाली है, इसमे जैसा उचारण किया जाता हे। इसके सदृश दूसरी कोई लिपि–कोई भाषा नहीं हो सकती।

सस्कृत साहित्य मे समस्त वर्णों के चार प्रयत्न बताये हैं। अर्थात् वर्ण चार प्रकार से प्रयत्न पूर्वक उच्चरित होने चाहिए। उन चार वाह्य प्रयत्नों के नाम हैं (१) स्पृष्ट, (२) ईषत् स्पृष्ट, (३) विवृत (४) सवृत। वर्ण भी चार प्रकार के होते हैं (१) स्वर वर्ण, (२) ऊष्मा वर्ण, (३) स्पर्श वर्ण, (४) अन्तस्थ वर्ण और (५) ह्रस्व अवर्ण विवृत है इनमे अच् जो प्रत्याहार है उसकी स्वर सज्ञा हे। हिन्दी मे तो हम लोग अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ऐसे १६ स्वर मानते हैं, किन्तु सस्कृत मे अच् की स्वर सज्ञा बताई हे अतः उनके यहाँ अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ओ, ऐ, और औ, इन नौ की अच् सज्ञा हे। अतः उनके मत मे स्वर नौ ही है। अब स्वर के पश्चात् ऊष्मा वर्ण हैं। श, ष, स और ह इन चार वर्णों की ऊष्मा सज्ञा है। ऊष्मा के पश्चात् तीसरे स्पर्श वर्ण आते हैं। तो 'क' से लेकर 'म' पर्यन्त जो पचीस अक्षर हैं, इनकी स्पर्श सज्ञा है। य, र, ल, व, ये चार

अन्तस्थ कहे जाते हैं। ह्रस्व अ वर्ण की विवृत संज्ञा है। वैसे ह्रस्व अकार तो स्वरों में ही आ गया, किन्तु पृथक् केवल 'अ' वर्ण विवृत कहलाता है। स्वरों के उच्चारण के जो प्रयत्न हैं उनके दो भेद हैं। वाह्य प्रयत्न और आभ्यातर प्रयत्न। वर्णों के उच्चारण का प्रयत्न नाभि से किया जाता है और कंठ में आकर वे उच्चरित होते हैं। जैसे 'क' शब्द का उच्चारण किया तो सबसे पहिले नाभि पर बल पड़ेगा। नाभि में हलचल क्रिया होगी। नाभि से उठकर प्रयत्न पूर्वक वह मुख में आवेगा। मुख के भीतर आने पर जो प्रयत्न होंगे, वे आभ्यान्तर प्रयत्न कहलावेंगे, नाभि से मुख तक आने में जो प्रयत्न है, वे वाह्य प्रयत्न कहाते हैं। जैसा कि पीछे बता चुके हैं आभ्यान्तर प्रयत्न चार प्रकार के हैं, कोई उन्हें पाँच प्रकार के भी मानते हैं। (१) स्पृष्ट, (२) ईषत् स्पृष्ट, (३) विवृत (४) संवृत। जो पाँच प्रकार के मानते हैं वे ईषत् विवृत को पाँचवा मानते हैं।

अब नाभि से मुख तक आने में जो प्रयत्न हैं वे ११ हैं। (१) विवार, (२) संवार, (३) श्वास, (४) नाद, (५) घोष, (६) अघोष, (७) अल्प प्राण, (८) महाप्राण और (९) उदात्त, (१०) अनुदात्त तथा (११) स्वरित इनकी भी गणना प्रयत्नों में करने से ये ११ हो जाते हैं। आभ्यान्तर प्रयत्नों में स्वर वर्ण जो नौ हैं और श, ष, स और ह चार ऊष्मा वर्ण है इन स्वर और ऊष्मा वर्णों का आभ्यान्तर प्रयत्न विवृत है। 'क' से लेकर 'म' पर्यन्त जो पचीस अक्षर हैं इनका प्रयत्न स्पृष्ट है, य, र, ल और व ये जो चार अन्तस्थ वर्ण है इनका प्रयत्न ईषत् स्पष्ट है केवल ह्रस्व अकार विवृत संवृत् प्रयत्न माना गया है।

अब ११ वाह्य प्रयत्नों के सम्बन्ध में सिद्धान्त कौमुदी में बताया है—खय प्रत्याहार के यम और खय प्रत्याहार तथा ≍ क और ≍ प तथा विसर्ग और शर प्रत्याहार भी इन सब के

१. श्वास, २. अघोष, और ३. कठ ये ही तीन विवार प्रयत्न वाले हैं। अन्य स्वर तथा हश प्रत्याहार ये सब १. घोष, २. संवार, ३. नाद तीन प्रयत्न वाले होते हैं। जैसे कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, आदि वर्ग हैं इन सब वर्गों का पहिला, दूसरा तथा तीसरा वर्ण जैसे कवर्ग मे से क, ख, ग और चवर्ग मे से च, छ, ज, इसी प्रकार सभी वर्गों के प्रथम, द्वितीय तृतीय वर्ण और वर्ग के यमग, यण प्रत्याहार ये सब अल्पप्राण प्रयत्न वाले कहलाते हैं। शेष सब वर्ण महाप्राण वाले हैं। स्वर का उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भी प्रयत्न माना गया है। इस प्रकार वर्णों का वाह्य आभ्यन्तर प्रयत्न समझकर कोन-सा वर्ण किस देवतात्मक है इसे जानकर ही वर्णों का विधिवत् शुद्ध उच्चारण करना चाहिए। सामवेद वाले कहते हैं। जितने स्वर है उनकी आत्मा इन्द्र है ऊष्मा वर्ण वालों की आत्मा प्रजापति है, स्पर्श वर्ण वालो की आत्मा मृत्यु है। अतः इन वर्णों के उच्चारण करते समय इन देवताओ का ध्यान करे। इस प्रकार सामवेद के प्रत्येक शब्द का उसके देवता का स्मरण करते हुए वड़े ध्यान से उच्चारण करे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! विनर्दिगुण विशिष्ट साम की उपासना बताकर स्तवन के समय कैसा ध्यान करना चाहिये इसका प्रकार बताया। अब किन वर्णों के कौन देवता हैं, इसको बताते हैं। जितने अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, और औ ये नौ स्वर हैं, इनकी आत्मा इन्द्र हैं। अर्थात् इन्द्र इन स्वरों को अपना ही अवयव मानते हैं। इन स्वरो मे इन्द्र की देवात्मकता है। जितने क से लेकर म पर्यन्त क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, ये स्पर्श संज्ञक वर्ण हैं उनकी प्रजापति आत्मा हैं अर्थात् प्रजापति इन्हें अपना अवयव मानते हैं। जितने श, ष, स और ह ये

ऊष्मा सञ्ज्ञक वर्ण ह इनकी आत्मा मृत्यु है। अर्थात् इन चार शब्दों को मृत्युदेव अपना अवयव मानते हैं ये चार शब्द मृत्यु देवात्मक हैं। इसलिये भगवती श्रुति सामवेद के उद्गाता को उपदेश करती है। कि बहुत लोगों का स्वभाव होता है, कि वे गुणों में भी दोष देखा करते हैं। अच्छी बातों में भी बुराई निकालते हैं। शुद्ध को भी अशुद्ध बताने का प्रयत्न करते हैं। अतः कोई उद्गाता शुद्ध स्वरों का उच्चारण कर रहा हो और उन शुद्ध स्वरों में भी कोई उपालम्भ दे अर्थात् उनमें भी मिथ्या दोष प्रदर्शित करके उस उच्चारण की निन्दा करे, तो उद्गाता को चाहिये कि निंदक को प्रत्यक्ष उत्तर न दे। उसकी निन्दा को सहन करके शान्त ही बना रहे। केवल इतना कह दे—"मैं तो देवराज इन्द्र की शरणागत हूँ मैं तो उन्हीं के प्रपन्न हूँ, मैं कुछ नहीं कहता—देवराज इन्द्र ही इसका तुम्हे उत्तर देंगे।"

यदि कोई श, ष, स और ह इन ऊष्मा सञ्ज्ञक वर्णों के शुद्ध उच्चारण में मिथ्या दोष लगाकर उपालम्भ दे ताना मारकर दोष प्रदर्शित करते हुए उच्चारण की निन्दा करे, तो उद्गाता को कह देना चाहिये—"देखो जी, मैं तो प्रजापति देव की शरण में हूँ। मैं उन्हीं के प्रपन्न हूँ, मैं तुमसे कुछ भी नहीं कहता। वे प्रजापति देव ही तुम्हारा मर्दन करें।" तुम्हें तुम्हारे अपराध का दंड देंगे। यदि कोई ऋत्विज् या अन्य व्यक्ति क से लेकर म पर्यन्त स्पर्श शब्दों के उच्चारण में मिथ्या दोष लगावे, उलाहना दे तो, उससे उद्गाता कहे—मैं मृत्यु की शरण हूँ, वही तुमको इस अपराध के दंड स्वरूप भस्मीभूत कर देगा। इस प्रकार मिथ्या दोष लगाने वालों की निन्दा न करें, उनसे कटु वचन न कहें, उनसे वाद विवाद न करे उन्हें देवताओं के ऊपर छोड़ दे।

सूतजी कह रहे हैं—मुनियो ! अब वर्णों को कैसे उच्चारण

करना चाहिये और साम के मन्त्रों का उच्चारण करते समय क्या करना चाहिये। इसके नियमों को बताते हैं। जितने स्वर हैं, उन्हें घोषयुक्त और बलयुक्त होकर उच्च स्वर से उच्चारण करना चाहिये। इसलिये स्वरों को घोषयुक्त बलयुक्त उच्चारण करे, तब अपने मन में ऐसी भावना करे 'मैं इन्द्र में बल का आधान करूँ।' क्योंकि स्वर इन्द्र देवात्मक हैं। समस्त ऊष्म वर्णों का, अग्रस्त अर्थात् जो अन्तर प्रवेश न किये हुए हों और अनिरस्त अर्थात् बाहर में प्रक्षेप न किये हुए हों ऐसे विवृत रूप से उच्चारण करना चाहिये। श, प, स, ह ये ही ऊष्मा हैं उनके उच्चारण करते समय "मैं प्रजापति को आत्मदान करूँ।" ऐसी भावना करनी चाहिये। .

अब जो 'क' से लेकर 'म' पर्यन्त पचीस स्पर्श वर्ण हैं उन्हें एक-दूसरे से ईषत् मात्र तनिक भी-मिलाये बिना पृथक्-पृथक् उच्चारण करना चाहिये। उन स्पर्श वर्णों के उच्चारण के समय ऐसा चिन्तन करना चाहिये, कि 'मैं' मृत्यु से अपना परिहार करूँ, मृत्यु से अपनी आत्मा को बचा सकूँ। इस प्रकार सामवेद के शब्दों का सचेष्ट होकर सावधानी के साथ सविधि उच्चारण करने से ही साम की सिद्धि सम्भव है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह मैंने वर्णों की देवतात्मता तथा उनके उच्चारण की विधि आपको बतायी। अब धर्म के जो तीन आधार स्तम्भ हैं उनके सम्बन्ध में आगे बताऊँगा। आप सब धर्म के अवतार ही हैं धर्म स्वरूप ही हैं। अतः इसे सावधानी के साथ श्रवण करें।"

छप्पय

शरण प्रजापति लई करै वह तेरो मरदंन।
इस्पर्शनि महँ दोष दिखावैं देइ उलाहन॥
मृत्यु शरण हौं लई करै दग्धहिँ तव ततछिन।
घोषयुक्त बलयुक्त करै सब स्वर उचारन॥
करूँ इन्द्र आधान बल, करै गान अस ध्यान युत।
ऊष्म वर्ण अग्रस्त अनिरस्त हुं उचारन विवृत॥
आत्मदान हौं प्रजापति, करूँ ध्यान ऐसो करै।
पृथक् स्पर्श उचारिकैं, मृत्य सतत मम परिहरै॥

इति छांदोग्य उपनिषद् के द्वितीय अध्याय में
बाइसवाँ खण्ड समाप्त हुआ।

—:—:—

॥ श्रीहरिः ॥

श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

१–भागवती कथा (१०८ खण्डों मे)—९० खण्ड छप चुके हैं। प्रति खण्ड का मू० १ ६५ पैसे डाकव्यय पृथक।

२–श्री भागवत चरित—लगभग ९०० पृष्ठ की, सजिल्द मू० ६ ५०

३–सटीक भागवत चरित (दो खण्डों मे)— एक खण्ड का मू० ११ ००

४–बदरीनाथ दर्शन—बदरी यात्रा पर खोजपूर्ण महाग्रन्थ मू० ५ ००

५–महात्मा कर्ण—शिक्षाप्रद रोचक जीवन, पृ०स० ३५० मू० ३ ४५

६–मतवाली मीरा—भक्ति का सजीव साकार स्वरूप मू० २ ५०

७–कृष्ण चरित—पृ० स० लगभग ३५० मू० २ ५०

८–मुक्तिनाथ दर्शन—मुक्तिनाथ यात्रा का सरस वर्णन मू० २.५०

९–गोपालन शिक्षा—गौओं का पालन कैसे करें मू० २ ५०

१०–श्री चैतन्य चरितावली (पाँच खण्डों मे)— प्रथम खण्ड का मू० १ ६०

११–नाम सकीर्तन महिमा—पृष्ठ सख्या ९६ मू० ० ६९

१२–श्री शुक—श्री शुकदेवजी के जीवन की झाँकी (नाटक) मू० ० ६५

१३–भागवती कथा की बानगी—पृष्ठ सख्या १०० मू० ० ३१

१४–शोक शान्ति—शोक की शान्ति करने वाला रोचक पत्र मू० ० ३१

१५–मेरे महामना मालवीयजी—उनके सुखद सस्मरण, मू० ० ३१

१६–भारतीय सस्कृति और शुद्धि—(शास्त्रीय विवेचन) मू० ०.३१

१७–राघवेन्दु चरित—पृ० स० लगभग १९० मू० ० ४०

१८–भागवत चरित की बानगी—पृष्ठ सख्या १०० मू० ०.३१

१९–गोविन्द दामोदर शरणागत स्तोत्र—(छप्पय छन्दों मे) मू० ०.२५

२०–भक्तचरितावली प्रथम खड मू० ४.०० द्वितीय खड मू० २ ५०

२१–सत्यनारायण की कथा—छप्पय छन्दों सहित मू० ० ७५

२२–प्रयाग माहात्म्य— मू० ०.२०

२३–वृन्दावन माहात्म्य—मू० ० १२

२४–सार्थ छप्पय गीता— मू० ३.००

२५–प्रभुपूजा पद्धति— मू० ० २५

२६–श्री हनुमत्-शतक— मू० ० ५०

२७–महावीर-हनुमान्— मू० २ ५०

पता—सकीर्तन भवन झूसी (प्रयाग)